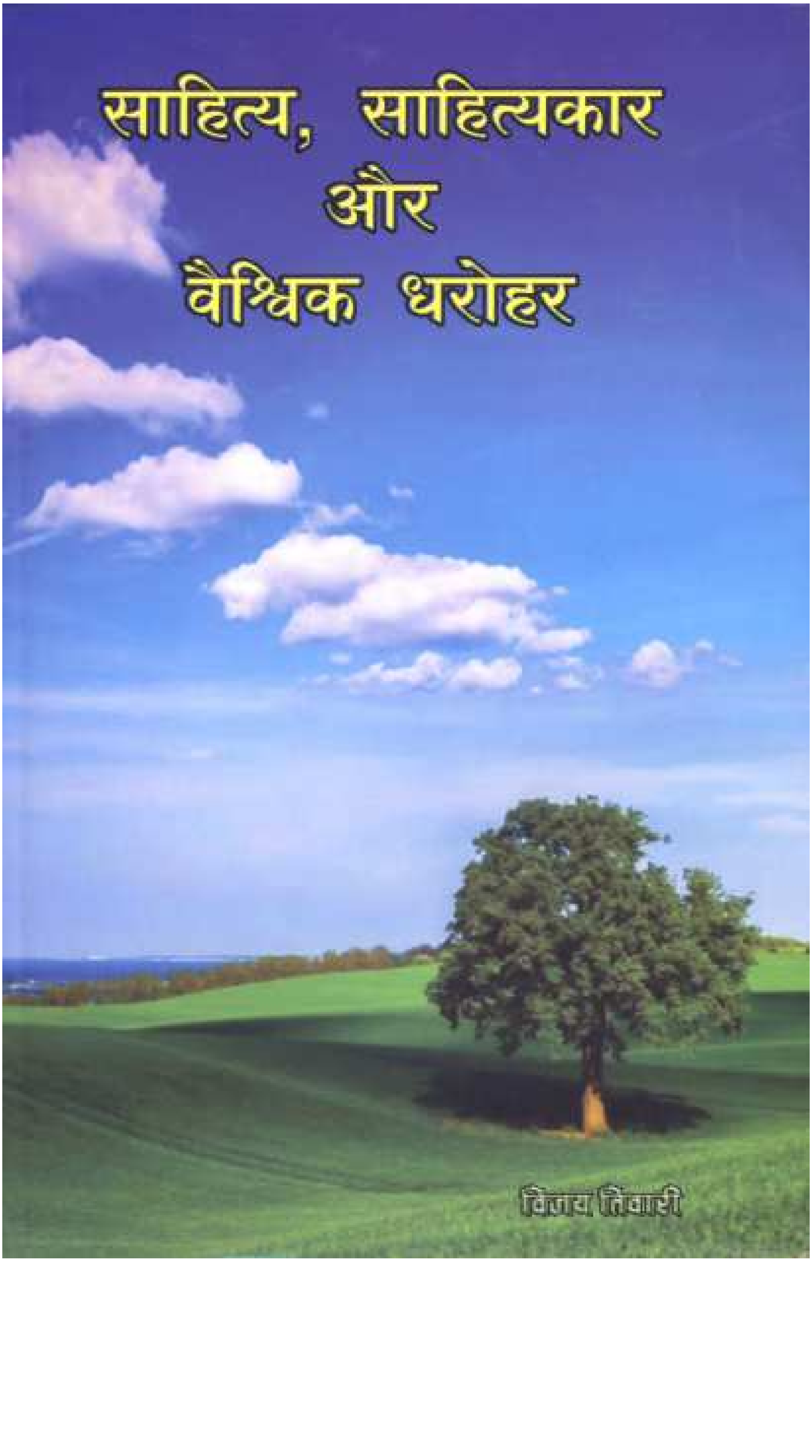
साहित्य, साहित्यकार
और
वैश्विक धरोहर
विजय तिवारी

साहित्य, साहित्यकार और वैश्विक धरोहर

विजय तिवारी

गुजरात हिन्दी साहित्य अकादमी की आर्थिक सहायता से प्रकाशित

गुजरात हिन्दी साहित्य अकादमी की आर्थिक सहायता से प्रकाशित

साहित्य, साहित्यकार और वैश्विक धरोहर

© विजय तिवारी

प्रथम संस्करण : महाशिवरात्रि, संवत - 2075
4 मार्च 2019

प्रतियाँ – 500

मूल्य : 200 रुपये

ISBN-978-93-6039-402-8

प्रकाशक :
विजय तिवारी
9, माधव पार्क II, वस्त्राल रोड, वस्त्राल,
अहमदाबाद-382418.
M. – 9427622862
Email : vijay.tiwari1998@gmail.com
http : // vtlibrary.wordpress.com

मुद्रक :
श्री रामानन्द ऑफसेट
अहमदाबाद–382415.
M. : 9106936809

मेरी अर्धांगिनी

मेरी

सहधर्मचारिणी

कुसुम को

सादर

समर्पित ।

शुभाशंसा

गुजरात के हिन्दी साहित्य जगत में श्री विजय तिवारी युवा कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं । वे मात्र कवि नहीं हैं, समीक्षक भी हैं । आपके द्वारा भिन्न भिन्न अवसर पर लिखे गये लेखों का संग्रह जिसे उन्होंने 'साहित्य, साहित्यकार और वैश्विक धरोहर' नाम दिया है, प्रकाशित हो रहा है । इस अवसर पर मैं उन्हें अपनी शुभकामनाएँ देता हूँ । साथ ही यह अपेक्षा रखता हूँ कि वे इसी तरह से काव्य-सृष्टि के सर्जन में तथा काव्य के समीक्षक की तथा भावक की अपनी भूमिका सतत अदा करते रहें ।

श्री विजय तिवारी ने मुझे इस प्रकाशन के प्रसंग पर अपना अभिप्राय लिख कर देने के लिये आत्मिक निवेदन किया । मैं यद्यपि हिन्दी साहित्य से अधिक परिचित नहीं हूँ,पुनरपि प्रेमभाव के कारण मैंने इस निवेदन का सहर्ष स्वीकार किया है ।

इस लेख संग्रह को उन्होंने अपनी प्रिय पत्नी को समर्पित किया है । कविजन प्राय: नियतिकृत सृष्टि के पर रह कर स्वयं रचित सृष्टि में मग्न रहते हैं । इस परिस्थिति से अलग हटके इन्होंने अपने नियतिकृत सचेतन सृष्टि के प्रति जो आदरभाव प्रदर्शित किया है, उसके लिये मैं सर्वप्रथम उनका अभिवादन करता हूँ ।

प्रस्तुत लेख संग्रह में कुल मिला कर चौदह लेख हैं – (1) सूरदास और उनका काव्यात्मक आभामण्डल शीर्षक वाले लेख में आपने सूरसागर के कुछ पद्यों की समीक्षा की है । इससे पूर्व सूरदास के काव्य की पृष्ठिभूमि भी आकारित की है । सूरदास काव्य के प्रति अपने विचारों को प्रस्तुत करते हुए आपने अन्य समीक्षकों के अभिप्राय भी यथास्थान अंकित किये हैं । प्रवर्तमान लेखन में उद्धरणों के पते देने की जो विद्वन्मान्य परम्परा प्रचलित है, उसका यहाँ निर्वहन किया गया होता तो बहुत ही अच्छा होता ।

दूसरा लेख (2) हमारी राष्ट्रभाषा और हमारी राष्ट्रीय अस्मिता पर है । आपने बहुत ही सरसता से इस लेख में हिन्दी की वर्तमान स्थिति के बारे में अपने अनुभव प्रस्तुत किये हैं । आपका मानना है कि जनता का कार्य जनता की भाषा में ही होना चाहिये । (पृ. 33)

(3) गुजरात के समकालीन हिन्दी गीतकार – शीर्षक वाले लेख में गुजरात में रचे गये हिन्दी गीतों की समीक्षा की गई है । इस समीक्षा में काव्यात्मक समीक्षा के साथ साथ राजनैतिक तथा सामाजिक समीक्षा का भी समावेश कर दिया गया है ।

(4) वैश्विक धर्म - अपने कर्तव्य का पालन

इस लेख में आपने धर्म और कर्तव्य की एकता का प्रतिपादन बहुत ही सटीक रूप से किया है। कर्मण्येवाधिकारस्ते.... जैसी संस्कृत सूक्ति के गूढ़ार्थ को भी अपने विचार से उजागर किया है।

(5) चलो भगवान बनें – भक्त को भगवान बनने के मार्ग को इस लेख में प्रशस्त किया है। आपके विचार से सद्‌गुण, अच्छाई, प्रामाणिकता, सहानुभूति, प्रेम, सद्‌भावना, विश्वशान्ति – ये ही भगवान का अर्थ है। (पृ. 56)

(6) साहित्य में निरूपित प्रकृति चित्रण – इस लेख में लेखक का केन्द्रीभूत विचार है कि साहित्य में प्रकृति का सबसे मनोहारी चित्रण यदि कहीं हुआ है तो वह काव्य है। आपका यह विचार हिन्दी साहित्य के संदर्भ में सही हो सकता है, पर संस्कृत में तो काव्य के साथ नाटक में भी उतना ही मनोहर रूप से प्रकृति चित्रण हुआ है। (यद्यपि संस्कृत भाषा की दृष्टि से तो काव्य शब्द में श्रव्य तथा दृश्य दोनों प्रकार के काव्यों का समावेश होता है। इसे भी ध्यान में रखना चाहिये।) इस लेख में हिन्दी की कुछ सुप्रसिद्ध रचनाओं में चित्रित प्रकृति चित्रण का रसास्वादन करवाया गया है।

(7) विराट व्यक्तित्व के ग़ज़ल गो – फिराक गोरखपुरी। इस लेख का प्रारंभ करते हुए लिखा है कि इन पर इतना अधिक कार्य हुआ है कि उसे एक दिन में मुकम्मल तौर पर बयान नहीं किया जा सकता। – इस परिस्थिति के होने पर भी आपने अपनी मेधा से इस कार्य को इस लघु लेख में आकारित कर अपनी बुद्धिमता का परिचय करवाने के साथ साथ फिराक गोरखपुरी की रचनाओं से आम जनता को परिचित करवाया है। आपका मानना है कि – फिराक ने ऊर्दू की इश्किया शायरी की कायापलट कर दी है। (पृ. 71)

(8) कबीर – बहुआयामी प्रतिभा के धनी। पूर्वाचार्यों की कबीर विषयक धारणा को उद्‌धृत करते हुए लेखक ने कबीर की प्रतिभा का अपने स्तर पर अवलोकन किया है। इसे प्रस्तुत करते हुए इस लेख में कई विधान किये गये हैं। उनमें से एक है – बाह्याडंबर और बाह्य सौन्दर्य तथा सजाब-बनाव के विरोधी कबीर ने कविता में भी उनकी उपेक्षा की है। (आपके इस विधान को पढ़ कर संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध एक न्याय सहज ही स्मरण में आ जाता है– यदि कवि शृङ्गारी है, तो सर्वजगत् शृङ्गारी बन जाता है और यदि कवि वीतराग है, तो संसार भी वैसा ही हो जाता है – शृंगारी चेत् कवि: काव्ये जातं रसमयं जगत्। स एव चेदशृंगारी नीरसं सर्वमेव तत्॥ – भोजकृत सरस्वतीकण्ठाभर, (परिच्छेद 5)

(9) पदमावत में पौराणिक पात्र-कथा निरूपण । यह लेख रामकथा का पदमावत के रूप में जो अवतार हुआ है, उससे माहितगार करवाता है । इसी अभिप्राय के साथ लेख का उपसंहार किया गया है ।

(10) जिन्दगी में शोर्टकट कितना जरूरी । साहित्य की समीक्षा के साथ साथ वर्तमान जगत की चिन्ता करने वाले समीक्षक के रूप में यह लेख है । वर्तमान में मानव मशीन बन चुका है । ऐसे मशीनी मानव के लिये यह लेख प्रेरणाप्रद है । इस में लेखक ने शोर्ट कट को अपनाने वाले लोगों को जीवन के सत्य को और उसके आनन्द को न समझने वाले के रूप में दर्शाया गया है । जो सर्वथा सत्य ही है ।

(11) उर्दू साहित्य में कौमी एकता । यह लेख भी राष्ट्रीयता की मानवता की भावना को उजागर करने कराने वाला है । साहित्य केवल मनोरंज के लिये नहीं है, वह पारस्परिक सद्‌भावना का भी प्रसारक है । इस तथ्य को यहाँ उजागर किया गया है ।

(12) पं. ब्रजनारायण चकबस्त के कलमी खाके । शायरी के जाने माने कलाकार तथा रचनाकार पं. ब्रजनारायण के योगदान को अंकित करने का इस लेख में उपक्रम किया गया है । लेखक का मानना है कि इनकी शायरी आशिक-माशुक के चोंचलों से निकल कर देशभक्ति तथा कौमी एकता की ओर आगे बढ़ी है ।

(13) वली गुजराती – फन और शख्सियत । गुजरात के विभूति के जीवन तथा कवन का परिचय इस लेख में करवाया गया है ।

(14) वैश्विक अस्मिता – अहमदाबाद । इस लेख का शीर्षक स्वयं स्पष्ट है । हाल में ही हमारे इस नगर को वर्ल्ड हेरीटेज का दर्जा प्राप्त हुआ है । इस प्रकार यह लेख प्रासंगिक बन गया है ।

उपर्युक्त लेखों में विषयों का वैविध्य स्पष्ट है । लेखों का संग्रह होने से ऐसा संभवित ही था । पर, यह संग्रह श्री विजय तिवारी की विज्ञता के व्याप का निर्देश करता है । मैं प्रसन्नता पूर्वक उनके इस प्रकाशन का स्वागत करता हूँ ।

अहमदाबाद
ता. 14-4-19
रामनवमी, 2075

(प्रो. कमलेशकुमार छ. चोकसी)
प्रोफेसर एवम् अध्यक्ष,
संस्कृत विभाग, भाषासाहित्य भवन,
गुजरात युनिवर्सिटी, अहमबाद-380009.

●●●

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी – विजय तिवारी

विजय तिवारी की रचना “साहित्य : साहित्यकार और वैश्विक धरोहर” हिन्दी साहित्य अकादमी के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित हो रहा है । यह निश्चय ही आनंद एवं गौरव का विषय है । साहित्य का बहुआयामी व्यक्तित्व धारण करने वाले विजय तिवारी ने अपने इस पुस्तक में विभिन्न शीर्षकों के द्वारा अपने समसामयिक जीवन और तेजी से बदलते हुए संदर्भों को अपनी कलम से बड़ी ही ईमानदारी से व्यक्त किया है, इस रचना में कुल 14 शीर्षक हैं । भक्तिकाल: आधुनिक काल और उर्दु साहित्य पर भी अपने विचारों के द्वारा तात्विक सामग्री प्रस्तुत करते हुए अत्यंत महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष दिए हैं, साथ ही लेखों का सारगर्भित आलोचनात्मक विश्लेषण भी किया है । लेखक की भाषा सरल तार्किक एवं बोधगम्य है । यह रचना आने वाले पाठकगणों के लिए उपादेय सिद्ध होगा ।

– निशा रम्पाल
अध्यक्षा हिन्दी विभाग,
भाषासाहित्य भवन
गुजरात युनिवर्सिटी,
अहमदाबाद-380 009.

अभिमत

साहित्य तत्कालीन संदर्भों का जीवंत दस्तावेज रहा है। इसी संदर्भ में विजय तिवारी के आलेखों का संकलन **"साहित्य, साहित्यकार और वैश्विक धरोहर"** हमारे सम्मुख है। संकलन में चौदह आलेख संकलित हैं, जो विभिन्न साहित्यकारों एवं समसामयिक विषयों पर केन्द्रित हैं। प्रथम आलेख "सूरदास और उनका काव्यात्मक आभामंडल" में उनके जन्म से लेकर प्रचलित विभिन्न अवधारणाओं पर युक्तिसंगत विचार किया गया है। काव्य बोध के धरातल पर लेखक का मानना है कि सूरदास के काव्य का कोई सानी नहीं है। दूसरा आलेख है "हमारी राष्ट्रभाषा और हमारी राष्ट्रीय अस्मिता" इसमें विभिन्न प्रसंगों सहित हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकारने के औचित्य पर विचार करते हुए हिंदी के अवदान और राष्ट्रभाषा के रूप में यथास्थिति सहित सामाजिकों में व्याप्त भाषिक मनोविज्ञान पर दृष्टिपात किया गया है। लेखक का मानना है कि प्रांत स्तर पर प्रादेशिक भाषा के साथ-साथ राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी का प्रयोग होना चाहिए। तीसरे आलेख "गुजरात के समकालीन हिंदी गीतकार" के अंतर्गत गुजरात के सभी प्रमुख गीतकारों का परिचय दिया गया है, जिसमें स्वयं लेखक भी सम्मिलित हैं। चौथा आलेख है "वैश्विक धर्म : अपने कर्तव्य का पालन" इसमें विभिन्न धर्मों का संदर्भ लेते हुए लेखक ने अपने मंतव्य स्वरूप कर्तव्य पालन को वैश्विक धर्म और मानव धर्म माना है। पंचम आलेख "चलो भगवान बने" में लेखक भगवान की अवधारणा को लेकर मनोमस्तिष्क में सामान्य रूप से उठने वाले प्रश्नों की चर्चा, और मनुष्य से देवत्त्व और भगवान बनने के दृष्टांत सम्मुख रखता है। छटे आलेख "साहित्य में निरूपित प्रकृति चित्रण" में साहित्य और प्रकृति के अन्योन्याश्रित संबंध को लेकर उसकी विवेचना की गई है। सातवें आलेख में प्रसिद्ध ग़ज़लकार फिराक गोरखपुरी पर प्रकाश डाला गया है और उनकी ख्यातिलब्ध शायरी का अमूल्य साहित्यनिधि के रूप में उल्लेख हुआ है। साथ ही उनके साहित्यिक अवदान और बेबाक व्यक्तित्व पर भी रोचक ढंग से प्रकाश डाला गया है।

आठवें आलेख में 'कबीर' के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए उनके जन्म से लेकर रामानंद के शिष्य बनने सहित रचना धर्मिता की चर्चा हुई है। लेखक ने कबीर के व्यक्तित्व तथा कृतित्व को अद्वितीय एवं अद्‌भुत माना है। नौवाँ आलेख है "पदमावत में पौराणिक पात्र-कथा निरूपण" इसमें जायसी के प्रसिद्ध महाकाव्य पदमावत में रामायण, महाभारत, पुराण आदि से

कथा प्रसंग में आए पौराणिक पात्रों को लेकर सारगर्भित विश्लेषण हुआ है। दसवाँ आलेख "जिंदगी में शोर्टकट कितना जरूरी" समसामयिक विषय पर आधारित है। यहाँ पर उन्होंने शोर्टकट को मृगतृष्णा के समान मानते हुए उसे अस्वीकार किया है। ग्यारहवें आलेख "उर्दू साहित्य में कोमी एकता" के अंतर्गत धार्मिक वैमनस्य के निराकरण में उर्दू साहित्य के योगदान पर प्रासंगिक रूप से विचार-विमर्श किया गया है। बारहवें आलेख में उर्दू शायरी के प्रसिद्ध हस्ताक्षर पं. ब्रजनारायण चकबस्त जिन्हें उर्दू, संस्कृत और अवधी भाषा का पूर्ण ज्ञान था, उनकी उर्दू शायरी और रचना कर्म पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। तेरहवें आलेख में दक्खनी हिंदी के ख्यातिलब्ध रचनाकार वली गुजराती की शायरी को लेकर सारगर्भित विवेचना की गई है। चैदहवाँ आलेख "वैश्विक अस्मिता : अहमदाबाद" जो इस संकलन का आखिरी आलेख है और यूनेस्को द्वारा अहमदाबाद को वर्ल्ड हेरीटेज (वैश्विक धरोहर) का दर्जा दिए जाने के संदर्भ में है। इसमें शहर की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विशेषताओं के साथ-साथ शहर की स्थापत्य कला तथा नगर व्यवस्था के विषय में बहुत रोचक ढंग से प्रकाश डाला है।

संकलन नवीन कलेवर और मौलिकता लिए हुए है। लेखक ने संबंधित विषय-वस्तु का रोचक शैली में प्रस्तुतिकरण किया है। सभी आलेख सम्यक जानकारी से परिपूर्ण हैं। संकलन सुधि पाठकों की कसौटी पर खरा उतरेगा ऐसा मेरा विश्वास है।

डॉ. सुनील कुमार
क्षेत्रीय निदेशक
केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, अहमदाबाद केन्द्र
बालभवन, बापुनगर,
अहमदाबाद-380024.

मन की बात

हिन्दी साहित्य में गद्य लेखन का अपना विशेष महत्त्व है। गद्य लेखन में विविधताएँ भी बहुत हैं और प्रकार भी अनेक हैं। गद्य लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह भी है कि इसमें विचारों की अभिव्यक्ति के लिए लेखक के पास पर्याप्त स्थान होता है। यदि लेखक के पास विशाल शब्द भण्डार हो और मानव मन को समझने की योग्यता और क्षमता हो तो लेखक की अभिव्यक्ति प्रभावपूर्ण, आकर्षक और असरदार हो जाती है। दृश्य, घटनाएँ, प्रकृति आदि को चित्रित करने के लिए गद्य लेखन में विशाल स्थान है। आवश्यकता है तो उतने ही विशाल शब्द भण्डार और उतनी सूक्ष्मता से उसे समझदारी से चित्रित करने की, उकेरने की। मनुष्य के मन मस्तिष्क को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं, 'संवाद' और संवाद गद्यलेखन के प्राण हैं यही वह तत्त्व है जो शब्दों को सजीव कर उन्हें साकार रूप देता है। पाठक के सम्मुख काल्पनिक चित्र को लेखक इस तरह प्रस्तुत करता है, इस कदर पेश करता है कि वह उसे सजीव साकार प्रतीत होता है। उस दृश्य में वह जीने लगता है। उस संवाद में पाठक स्वयं को देखने लगता है। यही गद्य लेखन का आकर्षण है यही उसकी सुन्दरता है।

संवादों के जरीए ही समस्याओं के समाधान निकाले जा सकते हैं। संवादों से ही गलतफहमियां दूर हो सकती हैं। संवादों से ही उलझनों को सुलझाया जा सकता है। संवादों से ही विचारों को एक दूसरे तक सम्प्रेषित किया जा सकता है। वर्णन से ही कल्पना को साकार मूर्त रूप दिया जा सकता है। संस्मरण से ही अतीत के पलों को जीवन्त किया जा सकता है। यह सब गद्य लेखन में ही सम्भव है। अतीत का ब्योरेबार विवरण प्राप्त कर वर्तमान में सावधानी रखते हुए भविष्य को कैसे सुधार सकते हैं, इसकी विस्तृत समीक्षा गद्य लेखन में ही हो सकती है। इतिहास जैसा समृद्ध और सुदृढ़ आधार हमें गद्य लेखन से ही प्राप्त हो सकता है। हिन्दी साहित्य की गद्य की तमाम विधाओं में विश्व का सर्वश्रेष्ठ साहित्य प्रचूर मात्रा में उपलब्ध है।

ऐसा कहा जाता है कि कवि, शायर के लिए गद्य लेखन बड़ा ही दूरूह कार्य है, अत्यन्त कठिन कार्य है और यह सच भी है। मैंने इसे स्वयं भोगा है इसलिए बड़ी इमानदारी से इस सत्य को स्वीकार करता हूँ। कवि का मन हमेशा से छन्द और बहर की पाबन्दियों को उनके अनुशासन को स्वीकार करते हुए बहुत कम शब्दों में बड़ी बात कहने का अभ्यस्त रहा है। छन्द का मिजाज और छन्द में स्थान को ध्यान में रखते हुए शब्दों का चयन करना और फिर उन्हें इस तरह पिरोना की छन्द न टूटे और भाव सम्प्रेषित हो जाए। हमेशा से जो इसी तरह

से काव्य रचना करता चला आया हो ऐसा कवि यदि गद्य लेखन करना चाहे तो यकीनन यह उसके लिए अत्यन्त कठिन कार्य ही सिद्ध होगा ।

मेरे साथ भी यही हुआ । जब मेरे लिए गद्य लेखन का समय आया तो मुझे भी कई परेशानियों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । शुरू में तो लगा कि ये कौन-सी बड़ी बात है, मैं कवि तो हूँ ही, लिखता तो हूँ ही, तो फिर किसी विषय पर शोधात्मक लेख लिखना कौन-सी बड़ी बात है । लेकिन जब लिखने बैठा तो लगा कि इससे बड़ा कठिन कार्य कोई नहीं है । कविता लिखना सरल है, आसान है, क्योंकि इसमें अपने मन की बात को सजाकर-सवांरकर प्रस्तुत करना है, लेकिन शोधात्मक लेख में स्थिति इसके विपरीत है। शोधात्मक लेख में आपको दूसरों के विचारों को सही ढंग से समझते हुए उस पर सटीकता पूर्ण समीक्षा करते हुए उसे न्यायपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करना होता है । गद्य लेखन में समीक्षा करना शोधपूर्ण लेख प्रस्तुत करना सबसे कठिन विधा है और यही मेरे हिस्से पड़ गया, सच कहूँ तो मैंने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया था । यह तो भोगने के बाद पता चला की इसमें कितनी दुश्वारियाँ हैं । लेकिन इस कार्य में आनन्द भी बहुत आया । बहुत कुछ सीखने और जानने को मिला। मेरे थोड़े से ज्ञान में थोड़ी और वृद्धि हो गई । किसी विषय पर शोध लेख लिखने के लिए अलग-अलग पुस्तकालयों में जाना वहाँ पर पुस्तकों का अध्ययन करना, विद्वानों से मिलना उनसे उस विषय पर चर्चा करना, विषय के अनुकूल संदर्भ और उद्धरणों को एकत्रित करना, इससे पहले इस विषय पर क्या लिखा गया, किसने क्या कहा उसका ध्यान रखना, इन सारी चीजों को सिलसिलेवार करना तब जाकर कहीं तैयार होता है शोध लेख । लेकिन यह भी सत्य है कि इस कार्य में आनन्द बहुत है ।

मैंने सबसे पहला लेख लिखा था रेडियो के लिए । अहमदाबाद आकाशवाणी केन्द्र से विषय दिया गया 'ज़िन्दगी में शोर्टकट कितना जरूरी' इस विषय पर सात-आठ मिनट का एक लेख लिखना था । विषय मेरे अनुकूल था मेरे मन का था । क्योंकि मैं स्वयं इस बात को हृदय की गहराई से स्वीकार करता था कि सफलता प्राप्त करने के लिए शोर्टकट जैसा कुछ नहीं होता है । जो लोग शोर्टकट का सहारा लेते हैं वे बहुत दूर तक नहीं जा पाते । मैंने तुरन्त स्वीकार कर लिया और लेख लिख दिया । आकाशवाणी से प्रसारित हुआ और सभी ने इसे खूब सराहा और काफी प्रशंसा हुई, यह मेरा सौभाग्य था । इसके बाद तो फिर सिलसिला शुरू हो गया । कवि सम्मेलनों और मुशायरों के साथ-साथ कभी-कभार सेमिनार और संगोष्ठियों में शोधपरक लेख भी प्रस्तुत करने लगा। लोगों की प्रशंसा और वाह-वाही पाकर मेरा उत्साह बढ़ता रहा और मैंने अपनी कलम को इस क्षेत्र में भी अब पूरी आजादी दे दी । माँ सरस्वती की कृपा

बरसती रही और मैं इस कार्य में डूबकर आनन्द लेने लगा। फिर तो संगोष्ठियों में शोधपरक लेख प्रस्तुत करने का यह सिलसिला अहमदाबाद से होता हुआ पूरे गुजरात मे फैल गया और गुजरात के बाहर भी आमंत्रण मिलने लगे। मेरे लेखों को प्रसिद्धि प्राप्त होने के शायद दो कारण हो सकते हैं ? एक तो यह की मैं पूरी ईमानदारी से परिश्रम करते हुए ये लेख तैयार करता था और दूसरा यह की कवि होने के कारण शब्दों के चुनाव में पूर्ण सावधानी बरतते हुए सटीक शब्द प्रयोग से वाक्य पूर्णत: सम्प्रेषित हो जाता था और कवि होने के ही कारण विषय के अनुकूल बीच-बीच में एकाध शेर सुनाया करता था।

यह मेरा सौभाग्य रहा की कई तो ऐसे विषय भी मिले जो चुनौती पूर्ण थे। मुझे याद है मलिक मुहम्मद जायसी के “पदमावत” पर एक विराट संगोष्ठी का आयोजन किया गया था। “पदमावत” से सम्बन्धित कई विषय थे किन्तु आयोजक ने मुझे विषय दिया था ‘पदमावत में पौराणिक पात्र कथा निरूपण’। मैं बड़ा असमंजस में पड़ा की अब क्या करूं। मैंने कहा भी की ये जो बाकी के विषय हैं इनमें से कोई भी मुझे दिया जाए। उन्होंने बताया की सिर्फ यही एक विषय बचा है, और वह भी इसलिए की इस पर कोई लिखना ही नहीं चाहता है। अगर आप भी नहीं लिखेंगे तो हमें इस विषय को निरस्त करना पड़ेगा। मैंने कहा अगर कोई नहीं लिखना चाहता है तो इसका मतलब की विषय शायद गलत होगा। पदमावत में ऐसी कोई बात होगी ही नहीं तो कैसे लिखा जाएगा। मैंने उनसे दो दिन का समय माँगा कि दो दिन के बाद आप तय करना की इस विषय को निरस्त किया जाए या नहीं। दो दिन के बाद मैंने अपनी सम्मति दे दी। मैं लिखने को तैयार था। जिन्हें पता चला उनमें से दो-एक विद्वानों ने मुझे यह सूचना भिजवाई की मैं सावधानी बरतूँ। उनके स्नेहमय आशीर्वाद को स्वीकार करते हुए मैंने सावधानी रखी और परिणाम यह हुआ की वह लेख अत्यन्त प्रशंसनीय रहा।

इसी प्रकार यह सिलसिला चलता रहा और आज भी अनवरत रूप से शोध परक लेखन का कार्य बड़े मनोयोग से कर रहा हूँ। इस संकलन में सम्मिलित सभी लेख संगोष्ठियों में पढ़े जा चुके हैं। कई लेख पत्रिकाओं और संकलनों में प्रकाशित भी हुए हैं। इन्हीं प्रकाशित और प्रसारित लेखों को संकलित कर आज पुस्तकाकार में प्रकाशित कर रहा हूँ। एक कवि और शायर होने के नाते मेरे लेखों की पुस्तक प्रकाशन का पर्व मेरे लिए बहुत ही अनूठा रोमांच है। खुशी के अतिरेक के कारण इसकी अभिव्यक्ति मेरे लिए शब्दातीत है। मैं बस इतना ही कह पा रहा हूँ कि सुधी पाठकों और प्रबुद्ध विद्वान मनीषियों के सम्मुख बड़े आदर से यह पुस्तक प्रस्तुत कर रहा हूँ। कृपया इस पर अपनी कृपा दृष्टि अवश्य करें और अपनी स्नेहमयी टिप्पणी से मुझे अवश्य अवगत करायें।

मैं अपने माता-पिता का सबसे अधिक ऋणी हूँ। निसन्देह जीवनभर मैं आपके ऋण से उऋण नहीं हो सकता। आपने शिक्षा-दीक्षा और आदर्श संस्कार देकर मेरा जीवन सफल कर दिया है। मैं उनके श्रीचरणों में नतमस्तक हूँ। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि मुझ पर माता-पिता की शीतल सुखद छत्रछाया सदैव बनी रहे और उनके शुभाशिर्वाद मुझे जीवनभर मिलते रहें।

मेरी सहधर्मचारिणी कुसुम तिवारी, मेरी प्यारी बेटी स्वाति और अपने अनन्य और एकमात्र मित्र जोसफ जॉर्ज को भी नहीं भूल सकता हूँ। ये मेरे सबसे बडे सम्बल हैं, यही मेरी आन्तरिक शक्ति के अनन्त उर्जा स्रोत हैं। इन्हीं के प्रोत्साहन से मैं इस संकलन को प्रकाशित करने में सफल हो पाया हूँ।

इस संकलन का शीर्षक तय करने में जिनका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान है वे हैं केन्द्रिय हिन्दी संस्थान, अहमदाबाद के निदेशक डॉ. सुनिल कुमार जी। आपका मित्रवत परामर्शक पथप्रदर्शन मुझे हमेशा सुलभ होता रहा है। आपका सहयोग मेरे लिए हमेशा प्रोत्साहक रहा है। मैं आपका हृदय से ऋणी हूँ, आभारी हूँ।

गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद के भाषा साहित्य भवन के अध्यक्ष और राष्ट्र के मूर्धन्य विद्वानों में बहुत ही सम्मानित और आदरणीय डॉ. कमलेशकुमार चोकसीजी ने समय निकालकर इस संकलन पर अपनी टिप्पणी से मुझे स्नेहमय आशीर्वाद दिया है। इसके लिए मैं आपका भी हृदय से ऋण स्वीकार करता हूँ, आभार व्यक्त करता हूँ।

गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद की हिन्दी विभाग की अध्यक्षा डॉ. निशा रम्पाल जी ने भी इस संकलन पर टिप्पणी देकर मुझ पर उपकार किया है। मैं आपका भी हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

गुजरात हिन्दी साहित्य अकादमी के आर्थिक सहयोग से इस पुस्तक का प्रकाशन सम्भव हो रहा है। अत: मैं अकादमी के प्रति भी आभार ज्ञापित करता हूँ।

राष्ट्र के प्रसिद्ध और मूर्धन्य साहित्यकारों में प्रतिष्ठित आदरणीय डॉ. किशोर काबराजी का स्नेहमय आशीर्वाद मुझे हमेशा सहज, सुलभ रहा है। आपके मार्गदर्शन में साहित्य साधना करने का सुअवसर मुझे मिलता रहा है यह मेरा सौभाग्य है। मैं आपको सादर प्रणाम करता हूँ।

इस पुस्तक को विशुद्ध रूप से पूर्णत: त्रुटि रहित प्रकाशित करने में सबसे बड़ा सहयोग श्री एस.टी. शास्त्रीजी का है। मैं उनके प्रति हृदय से आभारी हूँ।

अब यह पुस्तक पाठकों, प्रबुद्ध मनीषियों और तटस्थ समीक्षकों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ। बस इस निवेदन के साथ की अपना स्नेहमय आशीष अवश्य दें।

4 मार्च 2019 — **विजय तिवारी**

महाशिवरात्री संवत-2075 अहमदाबाद

अनुक्रम

1.	सूरदास और उनका काव्यात्मक आभामण्डल	17
2.	हमारी राष्ट्रभाषा और हमारी राष्ट्रीय अस्मिता	32
3.	गुजरात के समकालीन हिन्दी गीतकार	41
4.	वैश्विक धर्म: अपने कर्तव्य का पालन	52
5.	चलो भगवान बने	59
6.	साहित्य में निरुपित प्रकृति चित्रण	63
7.	विराट व्यक्तित्व के ग़ज़ल गो : फिराक गोरखपुरी	69
8.	कबीर : बहुआयामी प्रतिभा के धनी	79
9.	पदमावत में पौराणिक पात्र-कथा निरुपण	88
10.	ज़िन्दगी में शोर्टकट कितना जरुरी	95
11.	उर्दू साहित्य में कौमी एकता	98
12.	पं. ब्रजनारायण चकबस्त के कलमी खाके	103
13.	वली गुजराती : फ़न और शख़्सियत	113
14.	वैश्विक अस्मिता : अहमदाबाद	117

●

सूरदास और उनका काव्यात्मक आभामण्डल

सगुण भक्ति काव्यधारा में कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख और सबसे अधिक प्रभावशाली प्रतिनिधि कवि सूरदास हिन्दी काव्य गगन में सूर्य माने जाते हैं। इसीलिए कहा भी गया है कि –"सूर सूर तुलसी शशी उडगन केशवदास" सूरदास की सभी रचनाओं में आत्मनिवेदन, बाल माधुरी चित्रण अर्थात् वात्सल्य, ब्रज में कृष्ण की लीला, गोपियों की विरह विदग्धता ये अत्यंत मार्मिक स्थल हैं। सूरदास के काव्य में साहित्य एवं संगीत का अद्‌भुत और मनोहारी संगम हुआ है।

तुलसीदास की तरह सूरदास के जन्मकाल तथा जन्म-स्थान के विषय में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। सामान्यतः उनका जन्म संवत् 1540 के आसपास माना जाता है। ''चौरासी वैष्णवन की वार्ता'' में इनका जन्म-स्थान दिल्ली के समीप 'सीही' नामक ग्राम बताया गया है।

इस सम्बन्ध में कवि प्राणनाथ कहते हैं कि –

श्री बल्लभ-सुत लाडिले, सीहीं सर जल जात।
सारसुती दुज तरू सुफल, सूर भगत विख्यात॥

किन्तु डॉ. श्यामसुन्दरदास एंव आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनका जन्म-स्थान 'रुनकता' गाँव बताया है। यह गाँव आगरा से मथुरा जाने वाली सड़क पर स्थित है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे और इनका जन्म सन् 1478 (संवत् 1535) में सीही नामक गाँव में हुआ था।

सूरदास जन्मांध थे या नहीं, इस सम्बन्ध में भी बहुत विवाद है। 'भाव प्रकाश' में लिखा है कि वे जन्मांध थे। परन्तु 'चौरासी वैष्णव की वार्ता' तथा 'अष्ट सखान की वार्ता' में कहीं भी उनके जन्मांध होने का उल्लेख नहीं मिलता है। यदि वे जन्मांध होते, तो इनमें उल्लेख अवश्य होता। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हे जन्मांध नहीं माना है। इनके अन्धे होने के सम्बन्ध में भी कई कहानियाँ प्रचलित

हैं। एक दन्त कथा के अनुसार ऐसा कहा जाता है कि वितराग होने के बाद भी वे एक सुन्दरी पर आसक्त हो गये थे। उसका अनुसरण करते हुए उसके घर तक पहुँचे। तब अचानक उन्हें अपनी मोहावस्था का ज्ञान हुआ। अत: प्रायश्चित रूप में उन्होंने अपनी आँखें फोड़ लीं।

सूरदास ने प्राकृतिक शोभा और रूप-सौन्दर्य का जिस प्रकार सूक्ष्म वर्णन किया है वैसा सूक्ष्म वर्णन किसी जन्मांध द्वारा किया जाना सम्भव नहीं है। क्योंकि जो देखा ही नहीं है, उसका हू-ब-हू और इतना मनोहारी वर्णन करना असम्भव है। किन्तु सूरदास के एक पद में ऐसा उल्लेख अवश्य है –

भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।
श्री बल्लभ नख-चन्द्र-छटा बिनु सब जग माँझ अँधेरो।
साधन और नहीं या कलि में, जासों होत निबेरो।
सूर कहा कहै जनम आँधरो, बिना मोल को चेरो॥

परन्तु इस सम्बन्ध में डॉ. हजारी प्रसाद का कथन है – ''सब समय इसके अक्षरार्थ को ही प्रधान नहीं मानना चाहिए। यह मानसिक ग्लानि की अवस्था में कही हुई बात है, जिसमें अपनी हीनता को अतिरंजित करने की प्रवृत्ति काम करती रहती है।''

'सूरदास सों कहा निठुरई नैनन हू की हानि'

उपर्युक्त पंक्ति से तो यही भावार्थ प्रकट होता है कि सूरदास बाद में नेत्रहीन हो गए होंगे।

सूरदास गऊघाट पर रहकर विनय के पद गाया करते थे। इनके पदों में भक्ति की तल्लीनता, आत्मसर्मपण, उद्धार की प्रार्थना होती थी। महाप्रभु बल्लभाचार्य जब गऊघाट आए तो सूरदास ने उन्हें अपने भक्ति सम्बन्धि पद सुनाए। महाप्रभु बल्लभाचार्य सूरदास की कण्ठ-माधुरी से प्रभावित हुए, परन्तु उन्होंने कहा – "सूर ह्वै के ऐसो घिघियात काहे को है?" अर्थात् सूर्य होकर इतनी दीनता क्यों प्रकट करते हो? महाप्रभु ने उनकी सरलता भक्ति- तन्मयता और कवित्व - योग्यता देखकर उन्हें अपने 'पुष्टिमार्ग' नामक सम्प्रदाय की दीक्षा दी और उनसे कहा कि कृष्ण की बाल-माधुरी के पदों की रचना करो। सूरदास ने महाप्रभु की आज्ञानुसार वात्सल्य रस के

पदों की रचना आरम्भ कर दी । उन्हें गोवर्धन स्थित श्रीनाथजी के मंदिर में कीर्तन का काम सौंपा गया । फिर तो उनके पदों की ऐसी धूम मची कि वे वल्लभ सम्प्रदाय के श्रेष्ठ व्यक्ति माने जाने लगे और जब विट्ठलनाथजी ने कृष्ण-भक्ति के आठ कवियों को लेकर 'अष्टछाप' की स्थापना की तो सूरदास उनमें शिरोमणि माने गए । 'अष्टछाप' के इन कवियों में – सूरदास, नन्ददास, कुम्भनदास , परमानन्ददास, कृष्णदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी और गोविन्दस्वामी की गणना की गई है । यहीं सूरदास ने कृष्ण – लीला सम्बन्धी अगणित पदों की रचना की, जिनका संग्रह 'सूरसागर' है ।

जनश्रुति के अनुसार तानसेन के मुख से सूरदास का एक पद सुनकर सम्राट अकबर ने इनसे मिलने की इच्छा प्रकट की और इनसे मिलने स्वयं मथुरा आए थे । इसी प्रकार तुलसीदास जी ने चित्रकूट में इनसे भेंट की थी ।

सूरदास द्वारा प्रणीत ग्रंथों की रचना पाँच बताई जाती है – सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी, नल-दमयन्ती और ब्याहलो। परन्तु इनमें से केवल तीन रचनाएँ ही प्रामाणिक मानी गई हैं – सूरसागर, सूरसारावली और साहित्य-लहरी ।

साहित्य-लहरी मूलतः कूट प्रधान रचना है । इसमें कुल 118 दृष्टि के पद हैं, जिनमें राधा-कृष्ण के नख-शिख-सौन्दर्य एवं नायक– नायिका भेद की पद्धति पर कृष्ण की मधुर रास-लीला का यमक तथा श्लेष अलंकारों के माध्यम से वर्णन किया है । वस्तुतः इनके शब्दार्थ से अर्थ समझ में नहीं आता है । बड़े ही अटपटे और अपने आप में गूढ रहस्यों को लिए हुए ये पद हैं । इन पदों के गहरे अर्थों को समझने के लिए बड़े प्रयत्न अपेक्षित होते हैं । एक उदाहरण देखिए –

अद्‌भूत एक अनूपम बाग ।
जुगल कमल पर गजवर क्रीडत, तापर सिंह करत अनुराग ।
हरि पर सरवर, सर पर गिरवर, गिरि पर झूले कंज पराग ॥

सूरसारावली सूरसागर का ही संक्षिप्त रूप है । इसमें 'सार' अथवा सैद्धांतिक तत्वों के पद संगृहित हैं । इसमें कुल 1107 पद हैं । सूरदास कहते हैं –

करम योग पुनि ग्यान उपासन सब ही भ्रम भरमायौ ।
श्री वल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो, लीला भेद बतायौ ।।
ता दिन ते हरि-लीला गाई, एक लक्ष पद वंद ।
ताकौ सार 'सूरसारावलि' गावत अति आनंद ।।

सूरदास की अक्षय एवं वैश्विक कीर्ति का आधार-स्तम्भ सूरसागर है । ऐसा कहा जाता है कि इसमें एक लाख पद थे, किन्तु आज तक सूरसागर की किसी भी प्रति में दस हजार से अधिक पद नहीं मिले । एक लाख पद की जनश्रुति का आधार संभवत: उपर्युक्त पद का 'एक लक्ष्य पद वंद' ही हो सकता है । किन्तु विद्वानों का यह मत है कि इस वाक्य का अर्थ है – 'एक लक्ष्य - स्वरूप (श्री कृष्ण) के चरणों की वन्दना एक लाख या सवा लाख पदों की बात भ्रामक या अतिशयोक्ति प्रतीत होती है । गोसाईं गोकुलनाथजी ने 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में लिखा है – "और सूरदास ने सहस्रावधि पद किये हैं, ताको सागर कहिये सो सब जगत में प्रसिद्ध भये ।" इससे यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि सूरदास ने हजारों पद अवश्य लिखें हैं, लाख या सवा लाख नहीं ।

सूरसागर वास्तव में एक बृहद् गीति काव्य है, अथवा विभिन्न राग-रागिनियों के बनाए गए मुक्तक पदों (गीतों) का एक विशाल संकलन है। इस महाकाव्य का उद्देश्य भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं का गान करना है ।

श्रीमद्भागवत के समान ही सूरसागर भी बारह स्कन्धों में विभक्त है। इसकी रचना केवल भागवत के आधार पर हुई है, लेकिन यह अनुवाद नहीं है। 'रूप विधान तथा रंग-रेखाएँ सूरदास की अपनी हैं।' मुक्तक होते हुए भी पदों को क्रमवार लगाकर प्रबन्ध-काव्य की तरह सरसता और क्रमबद्धता का आयोजन किया गया है। प्रथम स्कन्ध में विनय सम्बन्धी पद और द्वितीय स्कन्ध में भक्ति सम्बन्धी पद हैं । तृतीय से नवम स्कन्ध तक विभिन्न पौराणिक कथाओं तथा भगवान विष्णु के अवतारों की कथा का वर्णन किया गया है। दशम स्कन्ध में श्रीकृष्ण के अवतार का विस्तृत वर्णन किया गया है और वास्तव में सूरदास की समस्त कविता का सार-तत्व दसम स्कन्ध ही है। अकेले दशम स्कन्ध में 3632 पद हैं। इतने अधिक पद अन्य

किसी भी स्कन्ध में नहीं हैं। इससे ज्ञात होता है कि सूरसागर की रचना का स्पष्टत: मुख्य उद्देश्य भगवान श्री कृष्ण की बाल-लीलाओं का चित्रण मात्र ही था। इसमें प्रमुखत: भगवान श्री कृष्ण की बाल्यावस्था का वर्णन है, किन्तु कुछ पद किशोरावस्था तथा यौवन के भी हैं। महाकाव्य कहने की अपेक्षा यदि सूरसागर को विशाल या बृहद् गीति-काव्य कहा जाए, तो अतिशयोक्ति न होगी।

सूरसागर के ग्यारहवें स्कन्ध में नारायण तथा हंसावतार की कथा है और बारहवें स्कन्ध में कल्कि अवतार की कथा एवं परीक्षित तथा जनमेजय की कथा का वर्णन है। इस प्रकार मुक्तक गीतों के माध्यम से भगवत् कथा का विस्तार से वर्णन किया गया है।

सूरदास वात्सल्य रस में ही सर्वाधिक मुखर नजर आते हैं। इनकी आत्मा यहीं अधिक रमती है। सूरदास द्वारा चित्रित बाल वर्णन इतना सटीक है, कि बच्चों के लिए 'बाल-गोपाल' शब्द प्रचलित हो गया है। 'वात्सल्य को रस की सत्ता सूर के कारण ही मिली है। सूरदास का दूसरा नाम यदि वात्सल्य रख दिया जाए तो अत्युक्ति न होगी। न केवल हिन्दी में, बल्कि विश्व के इतिहास में वात्सल्य रस का इतना महान कवि और कोई नहीं है, और शिशु का इतना मनोवैज्ञानिक वर्णन शायद विश्व का और कोई कवि नहीं कर सका है। डॉ. रामकुमार वर्मा कहते हैं कि – "..... उनकी कविता में मनुष्य के सुख-दु:ख का तार सदैव हिला करता है। उनकी कविता मनुष्य जाति के स्वरों में हँसती है और उसी के स्वरों में रोती है। बालकृष्ण के शैशव में, मचलने में, माँ यशोदा के दुलार में हम विश्वव्यापी माता-पुत्र-प्रेम देखते हैं।" इसी भाव की समीक्षा करते हुए आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने लिखा है – "सूरदास वात्सल्य रस के आचार्य हैं सूर्य जैसा वात्सल्य--स्नेह का भावुक कवि शायद ही कहीं मिले। उन्होंने राधा-कृष्ण के बालकपन के असंख्य मनोहर चित्र रखे हैं। सूर साहित्य में कृष्ण का पालने पर झूलना, घुटने के बल चलना, चाँद के लिए मचलना, नहाते समय रूठ जाना, मक्खन की चोरी करना और मिट्टी खाना, गोचारण, दानलीला, मानलीला आदि के असंख्य रसपूर्ण चित्र हैं। सूरदास ने अपनी बन्द आँखों से वात्सल्य के क्षेत्र का जितना उद्घाटन किया है, उतना आँख वाले कवि

भी नहीं कर सके। फिर वे जिस परिस्थिति का वर्णन करते हैं उसी में डूब जाते हैं। ऐसा लगता है कि बालक कृष्ण के हृदय में उतरकर उसकी मनोदशाओं का चित्रण कर रहे हैं। जब कृष्ण बोलते हैं, तो लगता है कि बालक ही बोल रहा है, कवि सूरदास नहीं।"

वात्सल्य के ऐसे ही कुछ उदाहरण आपके सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ। माता यशोदा शिशु कृष्ण को पालने में झुला रही हैं। वे पालने को हिलाती हैं, शिशु को दुलराती-पुचकारती हैं, मन में जो आए, गाती-गुनगुनाती हैं, फिर लोरी गाती हैं – "री निंदिया ! तू आ ! तू आकर मेरे लाड़ले को क्यों नहीं सुलाती ? तू जल्दी क्यों नहीं आती ? देख तूझे कन्हैया बुला रहा है।" कृष्ण कभी पलकें मूँद लेते हैं, और कभी उनका अधर फरकता है। जब यशोदा समझती है कि शिशु सो गया तो संकेत करके बतलाती है कि कोई बोले नहीं, कहीं शिशु जाग न उठे। इतने ही में शिशु व्याकुल होकर चिल्ला उठता है, तब यशोदा पुनः मधुर-मधुर गाने-गुनगुनाने लगती हैं। कवि सूरदास वर्णन करते हैं कि जो सुख देवताओं तथा ऋषि-मुनियों के लिए भी दुर्लभ है, वही यशोदा को सहज ही प्राप्त हो रहा है –

जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोई सोइ कछु गावै।
मोरे लाल को आवहु निंदिया, काहि न आनि सुलावै।
तू काहे नहिं बेगहिं आवे, तोकों कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावैं।
सोवत जानि मौन ह्वै के रहि, करि करि सैन बतावै।
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि, जसुमती मधुरे गावै।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुरलभ, सो नन्द भामिनि पावै॥

श्री कृष्ण थोड़े और बड़े होते हैं। घुटनों के बल चलने लगते हैं। घुटनों के बल सरकते, लुढ़कते शिशु का अत्यन्त स्वाभाविक और मनोहारी वर्णन करते हुए महाकवि सूरदास ने अनेकों पद लिखे हैं –

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नंद के आँगन, बिंब पकरिबे धावत॥

कबहुँ निरखि हरि आपु छांह को, कर सों पकरन चाहत ।
किलकि हंसत राजति द्वै दंतियां पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत ।।
कनक भूमि पर कर-पग छाया यह उपमा इक राजत ।।
करि करि प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा कमल बैठकी साजत ।।
बालदसा सुख निरखि जसोदा पुनि-पुनि नंद बुलावति ।
अँचरा तर लै ढांकि सूर प्रभु, जननी दूध पियावति ।।

श्री कृष्ण अब थोड़े और बड़े हो जाते हैं । माता यशोदा उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होना और चलना सिखा रही हैं । देखिए यह मनोहारी चित्र –

सिखवति चलन जसोदा मैया ।
अरबराइ कै पानि गहावति, डगमगाइ धरनी धरै पैया ।।
कबहुंक सुन्दर बदन बिलोकति, उर आनंद भरि लेति बलैया ।
कबहुंक कुल-देवता मनावति, चिर जीवहु मेरो कुंवर कन्हैया ।।
कबहुंक बलकों टेरि बुलावति, इहिं आँगन खेलौ दोउ भैया ।
सूरदास स्वामी की लीला अति प्रताप बिलसत नंदरैया ।।

हाथ में मक्खन लिए शिशु कृष्ण घुटनों के बल चलते और भी मनमोहक लगते हैं –

सोहत कर नवनीत लिये ।
घुटुरुन चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किये ।

अपने छोटे-छोटे पैरों से लड़खड़ाते हुए चलने का एक और दृश्य देखिए –

कान्ह चलत पग द्वै-द्वै धरनी ।
जो मन में अभिलाष करत हो, सो देखत नन्द धरनी ।।
रुनक-झुनक पायल बाजत पग यह है अति मन हरनी ।
बैठि जात पुनि उठत तुरत ही, अति छबि जात न बरनी ।।

एक दिन चन्द्रमा को देखकर उसे पाने के लिए शिशु मचल उठता है–

लैहों री माँ चन्द लहौंगो ।
कहा करौं जल-पुट भीतर को बाहर ब्यौंकि गहौंगो ।

मक्खन चुराते हुए पकड़े जानेवाला यह दृश्य तो अद्वितीय है, अति प्रसिद्ध है –

मैया, मैं नहिं माखन खायौ ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि बरबस मुख लपटायौ ॥
देखि तुहि सीके पर भाजन, ऊँचे धरि लटकायौ ।
तुहिं निरखि नान्हें कर अपने, मैं कैसे करि पायौ ॥
मुख दधि पौंछि बुद्धि इक कीन्हीं, दौना पीठि दुरायौ ।
डारि सांटि मुसुकाइ जसोदा स्यामहिं कंठ लगायौ ॥

दुबारा पकड़े जाने पर बालक कृष्ण कितना सुन्दर बहाना बनाते हैं –

मैं जान्यो यह घर अपनो है या धोखे में आयो ।
देखत हों गोरस में चींटी काढ़न को कर नायो ॥

उत्तर सुनकर उस भोली छवि पर मुग्ध होकर ग्वालिन मुस्कुराती है –

सुनि मृदु वचन निरखि मुख शोभा, ग्वालिनि मुरि मुसकानी ।

बालकों का आपस में लड़ना-झगड़ना तो बिलकुल स्वाभाविक है । बलदाऊ बालक कृष्ण को चिढ़ाते हैं इसकी शिकायत कृष्ण अपनी माता से कैसे करते हैं इसका मनोरम चित्र देखिए –

मैया, मोहिं दाऊ बहुत खिझायौ ।
मो सों कहत मोल को लीन्हों, तू जसुमति कब जायौ ॥
कहा कहौं इहिं रिस के मारे खेलन हौं नहिं जात ।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तेरो तात ॥
गोरे नंद, जसोदा गोरी, तू कत स्याम सरीर ।
चुटकी दै दै हंसत ग्वाल सब, सिखै देत बलबीर ॥
तू मोहीं को मारन सीखी, दाउहिं कबहुं न खीझै ।
मोहन को मुख रिस समेत लखि जसुमति पुनि-पुनि रीझै ॥

बालक कृष्ण की यह शिकायत सुनकर और उसकी भोली छवि पर निछावर होति हुई माता जसोदा कहती है –

सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई, जनमत ही को धूत ।
अरे कान्ह मोहिं गोधन की सौं हौं माता तू पूत ॥

बालक के प्रति माता की स्वाभाविक चिन्ता का चित्रण करते हुए सूरदास लिखते हैं ।

ऊँचे चढ़ि-चढ़ि कहति जसोदा, लै-लै नाम कन्हैया ।
दूरि खेलन जनि जाहु लला रे मारैगीं काहू की गैया ॥

बालक जैसे-जैसे बड़ा होता है, वैसे-वैसे वह अपने अंग-प्रत्यंगों के प्रति सावधान और जाग्रत होता जाता है। निम्न पंक्तियाँ देखिए जिसमें बालक कृष्ण अपनी चोटी के प्रति कितने स्वाभाविक चिंतित नजर आते हैं –

मैया, कबहिं बढ़ेगी चोटी।
कितिक बार मोहि दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी।
तू तो कहत बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी॥
काढ़त गुहत न्हावत ह्वै है नागिनि सी भुइँ लेटी।
काचो दूध पियावत पचि-पचि देत न माखन रोटी॥

इसी तरह फिर एक दिन वे अपनी माता से कहते हैं, कि वे अब बड़े हो गये हैं। इसलिए बलदाऊ और अन्य सखा मित्रों के साथ गाय चराने जाएँगे। बालक कृष्ण माता को आश्वासन देते हैं कि वे यहाँ-वहाँ कहीं भी भटकेंगे नहीं, सबके साथ ही रहेंगे –

मैया, हौं गाय चरावन जैहों।
तू कहि महर नंद बाबा सों, बड़ो भयौ, न डरै हौं॥
रैता पैता मना मनसुखा, हलधर संगहिं रैहों।
बंसीबट तट ग्वालिन के संग खेलत अति सुख पैहों॥
ओदन भोजन दै दधि कांवरि भूख लगै तै खैहौं।
सूरदास, है साखि जमुन जल सौंह देहु जु नहैहौं॥

कृष्ण गाय चराने चले तो गये, किन्तु लौटकर माता से शिकायत करते हैं कि कभी बलराम चिढ़ाते हैं, कभी खिझाते हैं। सभी सखा मुझे छोटा जानकर सारे काम मुझसे ही करवाते हैं। मैं बहुत ही थक जाता हूँ। माता यह सुनकर सब पर बहुत गुस्सा करती है और बालक कृष्ण को गले लगा लेती हैं –

मैया, हौं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों, मेरे पाइं पिराई॥
जौ न पत्याहि पूछि बलदाउहिं अपनी सौंह दिवाइं।
यह सुनि माइ जसोदा ग्वालिन गारी देति रिसाइ॥
मैं पठवति अपने लरिका कों आवे मन बहराइ।
सूर स्याम मेरो अति बारो, मारत ताहि रिंगाइ॥

अपने सखा बाल-गोपालों से कृष्ण का इतना अधिक स्नेह है कि एक-दूसरे मिलकर ही नहीं, बल्कि छीनकर खाते हैं –

ग्वालन कर तै कौर छुड़ावत ।
जूठो लेत सबन के मुख को, अपने मुख लै नावत ।।
षटरस के पकवान धरे सब, तामें नहिं रुचि पावत ।
हा-हा करि-करि माँग लेत हैं, कहत मोहि अति भावत ।।

खेलते-खेलते सुदामा जीत गए और कृष्ण हार गए । हारने पर कृष्ण 'रूहठि' करते हैं । खेल में धाँधली करना बालकों का अत्यधिक स्वाभाविक मनोभाव है । सुदामा भी गुस्से में आकर कृष्ण से कहते हैं –

खेलत में को काकौ गुसैयां ।
हरि हारे, जीते श्रीदामा, बरबसहीं कत करत रिसैयां ।।
जाति पांति हम ते बड़ नाहिं, नाहिं बसत तुम्हारी छैयां ।
अति अधिकार जनावत हम पै, हैं कछु अधिक तुम्हारे गैयां ।।
रूहठि करै तासों को खेलै, कहै बैठि जहं तहं सब ग्वैयां ।
सूरदास, प्रभु खेलोई चाहत, दांव दियौ करि नंद-दुहैयां ।।

तरुणाई आने पर कृष्ण के हाथ मुरली लग गई । साँझ के समय गौओं को लेकर जब वे वन से लौटते हैं तो ब्रजवासी वंशी की ध्वनि से मुग्ध हो जाते हैं । उनकी मुरली ने गोपियों को मुग्ध कर लिया है । परन्तु राधिका को वह सौत प्रतीत होती है । क्योंकि कृष्ण हमेशा मुरली लिए रहते हैं, उन्हें मुरली से बड़ा प्यार है –

अधर रस मुरली सौतनि लागी ।
जा रस को षद्ऋतु तप कीन्हों सो रस पिबत सभागी ।।
कहा कहौं कहँ ते यह आई, कौने याहि बुलाई ।
'सूरदास' प्रभु हम पर ताकौं, कीनी सौति बजाई ।।

कृष्ण अब और बड़े हो गए हैं गोप-गोपियों को लेकर कृष्ण मधुवन में रास रचाने लगे हैं । रास की मोहकता का एक चित्र देखिए–

आजु हरि अद्‌भुत रास रचायो ।
अचल चले, चल थकित भए सब, मुनिजन ध्यान भुलायो ।।
चंचल पवन थक्यो नहिं डोलत, जमुना उलटि बहायो ।
थकित भयो चन्द्रमा सहित मृग, सुधा समुद्र बढ़ायो ।।

गोप-गोपियों के सम्मिलित नृत्य के एक चित्र को कवि ने इस प्रकार चित्रित किया है –

मानो माई घन-घन अन्तर दामिनि ।
घन दामिनि, दामिनि घन अन्तर सोभत हरि ब्रज भामिनि ॥

इसी प्रकार प्रेम, रार-तकरार, मान-मनोवल, अनुराग, दर्शन, उपालम्भ और मिलन के अगणित सुन्दर चित्र कवि ने बड़े मोहक एवं स्वाभाविक रूप में चित्रित किए हैं । चीरहरण-लीला के पद तो बस पढ़ते ही बनते हैं । कालिय-मर्दन में कृष्ण का वीर रूप प्रकट हुआ है। परन्तु सूरसागर का सबसे हृदय-स्पर्शी अंश तो भ्रमर-गीत ही है ।

मथुरा जाकर कृष्ण राजनीति में उलझ जाते हैं। उनके विरह-वियोग में ब्रजवासियों की दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है।ब्रज के नर-नारी, गोप-गोपियाँ ही नहीं, अपितु पेड़-पौधे, लताकुंज, पक्षी और गौएँ सभी वियोग-वेदना से तड़पने लगते हैं। प्रत्येक को कृष्ण अपने प्राण से भी अधिक प्रिय हैं, तो फिर वे उनके लिए दु:खी क्यों न होते ? ब्रजवासियों को सांत्वना देने के लिए कृष्ण अपने अनन्य सखा उद्धव को भेजते हैं। उद्धव वहाँ जाते हैं और गोपियों से वन में भेंट होने पर वे उन्हें प्रेम और भक्ति की अपेक्षा ज्ञान और वैराग्य का उपदेश देने लगते हैं। उद्धव उन्हें समझाते हैं कि उन्हें निर्गुण की उपासना करनी चाहिए। विरहाग्नि में आकुल गोपियों का हृदय और भी आकुल-व्याकुल हो उठता है। उसी समय वहाँ एक भौंरा आता है। उसे कहने के बहाने से गोपियों ने उद्धव को जो खरी-खोटी सुनाई है, उससे प्रेम की महिमा का अत्यन्त सूक्ष्म एवं हृदय-स्पर्शी निरूपण हुआ है। भ्रमर-गीत कृष्ण-साहित्य का एक अभिन्न अंग है। सूरदास के बाद नंददास का भ्रमर-गीत भी बहुत श्रेष्ठ माना जाता है और आधुनिक काल में जगन्नाथदास रत्नाकर ने भी 'उद्धवशतक' लिखकर इस परम्परा का निर्वाह किया है। परन्तु भ्रमर-गीत के मूल कवि सूरदास ही हैं।

कवित्व की दृष्टि से भ्रमर-गीत काव्य इतना उच्च कोटि का है कि यदि सूर ने केवल भ्रमर-गीत ही लिखा होता, तो भी हिन्दी-साहित्य में उनका नाम अमर हो जाता । कुछ विशेष उदाहरण दृष्टव्य हैं –

❊ ऊधो जोग जोग हम नाहीं ।
अबलासार ग्यान कहा जाने कैसे ध्यान धराहीं ॥

* ऊधो मनमाने की बात ।
  दाख छुहारा छाँड़ि अमृतफल बिस-कीड़ा बिस खात ॥
* काहे कौं रोकत मारग सूधौ !
  सुनहु मधुप निरगुन कंटक तैं राजमार्ग क्यों रूँधौ ॥
* ऊधो कोकिल कूजत कानन ।
  तुम हमकों उपदेश करत हो भस्म लगावत आनन ॥
* निरगुन कौन देस को बासी ।
  मधुकर कहि समझाई सौंह दै बूझति साँचु न हाँसी ।
  को है जनक जननि को कहियत, कौन नारी को दासी ॥
* वा मोहन कौन पतीजे, बोलत मधुरी बानी ।
  हमकौं लिखि-लिखि जोग पठावत आपु करत रजधानी ॥
* ऊधो मन नाहीं दस बीस ।
  एक हुतो सो गयो स्याम संग, को अवराधै ईस ॥

व्यंग्य-काव्य की दृष्टि से संसार के साहित्य में भ्रमर-गीत का स्थान सर्वश्रेष्ठ है । यह व्यंग्य सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में अपना सानी नहीं रखता है। सूर का यह भ्रमर-गीत हिन्दी काव्य में अद्‌भुत, अद्वितीय और बेमिशाल है । भ्रमर-गीत के पद मानव के अन्तरतम को छू लेते हैं । प्रेम की गरिमा और उसके सौन्दर्य का ऐसा मर्मस्पर्शी काव्य हिन्दी-साहित्य की बहुमूल्य उपलब्धि है ।

सूरदास के विनय सम्बन्धी पदों में विनय, दीनता आदि की भावना मुख्य है । कवि ने अपने को पतित मानकर पतितपावन से अपने उद्धार की प्रार्थना की है । श्री जयनाथ नलिन ने इस विषय में लिखा है – "विनय के पदों में सूर की तीखी वेदना, करूणोत्पादक दीनता, इष्ट की महत्त्व-भावना, उपास्य के दाक्षिण्य का अचल विश्वास, उस विश्वास से उत्पन्न उल्लास तथा शरणागत-आस्था, अश्रु-भीगा चीत्कार और आत्मा की सच्ची पुकार बाँध तोड़कर उमड़ पड़ी है ।"

दीनभाव की अभिव्यक्ति के लिए सात भूमिकाएँ या मन: स्थितियाँ होती हैं – 1. दीनता 2. मानमर्षण 3. भयदर्शन 4. भर्त्सना 5. आश्वासन 6. मनोराज्य और 7. विचारण । सूरसागर में सभी भूमिकाओं के उदाहरण उपलब्ध होते हैं –

1. दीनता – मौ सम कौन कुटिल खलकामी ।
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो, ऐसो नोन हरामी ॥
2. मानमर्षण – माधव जू सौं अपराधी हौं ।
जनम पाइ कछु भलो न कीन्हों, कहो सु क्यों निबहौं ॥
3. भयदर्शन – अब की राखि लेहु भगवान ।
हम अनाथ बैठे द्रुम-डरिया, पारधि साधे बान ॥
4. भर्त्सना – छाँड़ि मन हरि बिमुखन को संग ।
जाके संग कुबुद्धि उपजे परत भजन में भंग ॥
5. आश्वासन– सरन गये को को न उबार्‌यो ।
जब जब भीर परी संतन पर चक्र सुदरसन धार्‌यो ॥
6. मनोराज्य – वाको काहे की कमी, जाके राम धनी ।
मनसा नाथ मनोरथ पूरण सुख निधान जाकी मौज घणी ॥
7. विचारण – जा दिन मन पंछी उडि जैहै ।
ता दिन तेरे तन-तरुवर के सबै पात झरि जैहें ॥

इसके सिवा भक्त की भगवान से नोकझोंक भी चलती रहती है। भक्त को उपालंभ देने का अधिकार है। वह लड़ता-झगड़ता, रूठता– मानता, धमकी देता हुआ अपने भगवान को अपने उद्धार के लिए विवश कर देता है। यहाँ दास्य भाव नहीं रह जाता है। यहाँ सारी बातें सख्य भाव से होती हैं और पुष्टि मार्ग का यही बीज है। यहाँ आकर आराध्य-आराधक एक धरातल पर आ जाते हैं। भक्त अपने भगवान से साफ कहता है – तुम्हें गरज हो तो हजार बार आकर मेरा उद्धार करो और नहीं आना हो तो मत आओ। 'मो सम कौन कुटिल खल तार्‌यो', 'ग्वालन कर तैं कौर छुड़ावत, झूठो लेत सवन के मुख को', 'आजु हौं एक-एक करि टरि हौं, कै हम ही कै तुम ही माधौ अपुन भरोसे लरिहौं', 'प्रीति करि दिन्ही गरे छुरी।'

होते होते भक्त का भगवान पर इतना अधिकार बढ़ जाता है कि उन्हें झूठे और दगाबाज तक कह देता है, और फिर धमकी तक देता है –

अब हों उघरि नचन चाहत हौं,
तुम्हें बिरद बिनु करिहौं।

सूरदास एक भक्त थे, किन्तु नुर्गुण ब्रह्म की महिमा का उन्होंने अनेक स्थानों पर गुणगान किया है। वस्तुत: वैष्णव भक्ति पद्धति निर्गुण ब्रह्मोपासना का ही एक प्रकार है, जिसमें साकार-पूजा रूपक के रूप में अपनायी गई है। श्रीकृष्ण ब्रह्म के प्रतीक हैं, राधा उनकी शक्ति है। गोपियाँ आत्माएँ हैं और वृन्दावन गोलोक है। यह रास-लीला अनादिकाल से चली आई है और अनन्त काल तक चलती रहेगी।

यही कारण है कि सूरदास का निर्गुण भक्ति से कुछ विरोध नहीं। निर्गुण-माहात्म्य बतलाते हुए उन्होंने कहा है –

पिता मात इनके नहीं कोई।
आपहिं करता आपहिं हरता निरगुण गये ते रहत है कोई।

उस अविज्ञात की लीला अवर्णनीय है –

अविगत, आदि, अनन्त, अनूपम, अखिल पुरुष अविनाशी।
पूरन ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम, निज गोलोक विलासी॥

और –

तीन लोक निज देह में राखे करि विस्तार।
आदि पुरुष कोई भयौ, जो प्रभु अगम अपार॥

परन्तु सूरदास सगुण की उपासना की आवश्यकता का व्याख्यान करते हुए कहते हैं –

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगेहि मीठो फल चाख्यौ रस अन्तरगत ही भावै॥
रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु निरालंब मन चकृत धावै।
सब विधि अगम बिचारहिं ताते सूर सगुन लीला पद गावै॥

अर्थात् उस अविज्ञात निर्गुण निराकार की गति-विधि का कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता है। जैसे कोई गूँगा यदि मीठा फल चखे, तो उसके रस को हृदय में तो अनुभव कर सकता है, किन्तु वाणी से वर्णन नहीं कर सकता। निराकार ईश्वर का न रूप है न रेखा, न जाति न गुण–फिर मन किसका आधार ले ? वह निराश्रय होकर भ्रान्त होता, भटकता फिरता है। उस निर्गुण को सब प्रकार से अगम्य जानकर ही सूरदास ने सगुण साकार श्रीकृष्ण के रूप में उसकी लीला का गीतों के रूप में गान किया है। एक पद में उन्होंने इस बात को बड़े ही रोचक ढंग से कहा है –

वेद उपनिषद यश कहै निर्गुणहिं बतावै ।
सोइ सगुण होई नन्द की दाँवरी बँधावै ॥

सूरदास वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में विश्वास रखते थे । इस मार्ग में श्रीकृष्ण ही परम उपास्य देव माने जाते हैं । वे परम ब्रह्म परमेश्वर, निर्गुण, निराकार ईश्वर हैं, तथा सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और विनाश करते हैं । निराकार ईश्वर ही साकार रूप धरकर दुष्टों का नाश तथा सज्जनों का संरक्षण किया करते हैं । एक ओर यदि वे अक्षर ब्रह्म हैं, तो दूसरी ओर लीला-बिहारी हैं । पुष्टि के चार प्रकार हैं – मर्यादा पुष्टि, प्रवाह पुष्टि, पुष्टि पुष्टि और शुद्ध पुष्टि। इन्हीं के अनुसार भक्ति भी चार प्रकार की है – प्रथम में भगवान के गुणों का ज्ञान, दूसरी में कर्म, तृतीय में स्नेह और चतुर्थ में आराध्य से पूर्ण प्रेम की प्रधानता होती है । पुष्टि मार्ग की भक्ति में सख्य-भाव की प्रधानता है । सूरदास ने आरम्भ में कुछ पद भले ही दास्य भाव से बनाए हों, परन्तु पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने के उपरान्त उन्होंने जिन पदों की रचना की, वे सख्य भाव के ही हैं ।

सूर का काव्य हृदयवादी काव्य है । नाना राग-रागिनियों में बँधे सूर के पदों में साहित्य और संगीत का मणि-कांचन संयोग हुआ है । स्वाभाविकता, सरसता और मार्मिकता के कारण यह काव्य अपना सानी नहीं रखता । सूर ने तुलसीदास के समान जीवन का व्यापक क्षेत्र नहीं चुना, परन्तु जिस अंश को उन्होंने हाथ लगाया वही मधुर हो गया । यह काव्य नवनीत के समान धवल, कोमल और मधुर है । पद-विन्यास, स्वरसंगीत, अलंकार नियोजन, ध्वनि-किसी भी दृष्टि से देखें–सूर का काव्य अपना उपमान आप ही है । उसमें मुहावरे, लोकोक्तियाँ, व्यंग्य–लाक्षणिकता का भी प्रयोग हुआ है ।

सूर की भाषा सरस कोमल ब्रजभाषा है । जिसमें संस्कृत, तद्भव, देशी तथा कहीं-कहीं अरबी-फारसी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है ।

सूरदास का देहावसान परसोली गाँव के सरोवर-तट पर सन् 1563 में हुआ । विश्व के महान गायक तानसेन ने सूर के पदों के लिए कहा है –

किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर ।
किधौं सूर को पद सुन्यौ, तनमन धुनत सरीर ॥

• • •

हमारी राष्ट्रभाषा और हमारी राष्ट्रीय अस्मिता

"हिन्दी दुनिया की महान भाषाओं में एक है। भारत को समझने के लिए हिन्दी का ज्ञान अनिवार्य है। हिन्दी का महत्त्व आज इसलिए और भी बढ़ गया है, क्योंकि भारत आज शिक्षा, उद्योग और तकनीक के हिसाब से दुनिया का अग्रणी देश है।" — **डॉ. मैग्रेशर** (इंग्लैंड)

आज के आधुनिक विश्व में प्रचलित भाषाओं में चीनी और अंग्रेजी के पश्चात् हिन्दी का तीसरा स्थान है और समस्त विश्व के सबसे विशाल लोकतंत्रात्मक देश भारत में हिन्दी का स्थान सर्वोपरी है। इसका प्रचार समस्त राष्ट्र में इस सीमा तक अवश्य है कि किसी भी अहिन्दी प्रान्त का निवासी हिन्दी शुद्ध रूप से चाहे न बोल सके किन्तु समझ अवश्य सकता है। देवनागरी लिपि में लिखी जानेवाली भाषा हिन्दी में इतनी सरलता एवं सहजता है कि कोई भी व्यक्ति एक बार इसके सम्पर्क में आने के बाद इसके आकर्षण से मुक्त नहीं रह सकता। इसीलिए प्राचीन समय से हिन्दी की सर्वोपरिता, सर्वप्रियता निर्विवाद है। प्राचीन समय से ही तीर्थ स्थानों में पर्यटन-केन्द्रों में, व्यापारिक मंडियों में, साधु-संतों में, सार्वजनिक उत्सवों में, कवि-पंडितों में, राज-दरबारों में भावों के आदान-प्रदान की भाषा हिन्दी रही है। सदियों पूर्व से ही इसे राजभाषा का गौरवपूर्ण आसन अनायास प्राप्त है। आज भी इस अत्याधुनिक विश्व में शताधिक राष्ट्रों में स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर तक हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की सम्पूर्ण व्यवस्था है।

यह कहना गलत है कि देश में हिन्दी बोलने-समझने वालों की संख्या-बहुलता के कारण ही राष्ट्र भाषा के रूप में इसे थोपा गया है। हिन्दी को किसी पर लादने या थोपने का प्रश्न उठाना हिन्दी की ऐतिहासिक भूमिका को अनदेखा करना है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में उनका भी महत्त्वपूर्ण योगदान है, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं थी। बंगाल से सर्वप्रथम राजा राममोहन राय ने हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार करने की आवाज

उठाई थी। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने पर जोर दिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने सभी ग्रन्थ हिन्दी में ही लिखे। साथ ही वे अपने तमाम आर्य समाजियों को हिन्दी का व्याहारिक ज्ञान हो इसका आग्रह रखते थे। महान सम्राट अकबर स्वयं हिन्दी में कविता करते थे और यह परम्परा जहाँगीर, औरंगजेब और बहादुर शाह तक कायम रही। सदियों पूर्व से ही इस वीर भोग्या भूमि की सर्वस्वीकृत, सर्वमान्य भाषा हिन्दी ही रही है। पुराने समय में दो राज्यों के राजाओं के बीच पत्राचार भी हिन्दी में ही होता था। फिर वे शासक मराठा, मुगल, सिख, बंगाली या राजस्थानी ही क्यो न हों।

आज से सत्तर वर्ष पूर्व 14 सितम्बर 1949 को संविधान सभा ने स्वतंत्र लोकतन्त्रात्मक भारत के राष्ट्रीय प्रशासन के लिए हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकृति प्रदान की किन्तु यह स्वीकृति कागज में लिपिबद्ध होकर फाइलों में सिमटकर रह गई। आज भी अंग्रेजी का वर्चस्व बदस्तूर बना हुआ है। इसके लिए हमारे तथाकथित राजनेता और मानसिक गुलामी से पीड़ित कुछ स्वार्थीतत्त्व ही उत्तरदायी हैं। भारतीय संविधान की मूल भावना के अनुसार देवनागरी लिपि में लिखी गई हिन्दी ही भारत की राजभाषा है। इसके बावजूद आज देश में अंग्रेजी का ही वर्चस्व बना हुआ है। संविधान में हिन्दी को भारत की राजभाषा बनने से अंग्रेजी भक्त रोक नहीं पाए क्योंकि हिन्दी के पक्ष में लोकमत की प्रबलता थी इसीलिए उन्होंने हिन्दी को संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार तो कर लिया था, परन्तु देश के प्रशासन तन्त्र पर कुंडली मारकर बैठे हुए मैकाले के मुट्ठीभर मानस पुत्र जो उस समय शासन के सर्वोच्च स्थान पर बैठे थे, वे हिन्दी के विशेष पक्षधर नहीं थे। उनका यह मानना था कि अंग्रेजी के बिना देश की उन्नति और प्रगति नहीं हो सकती। इसीलिए उन्होंने हिन्दी को संघ की राजभाषा स्वीकार करने के साथ-साथ यह शर्त भी लगा दी कि अभी 15 वर्ष तक अंग्रेजी का प्रयोग भी उसी तरह चलता रहेगा जैसा अब तक चलता आया है बात यहीं खत्म नहीं हो जाती अगर इतना ही होता तब भी गनीमत थी क्योंकि 15 वर्ष के पश्चात् हिन्दी को सम्मान प्राप्त हो जाता किन्तु ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि यह शर्त लगाने के पश्चात् उन्हें यह आभास हुआ कि 15 वर्ष के बाद अंग्रेजी

का स्थान हिन्दी ले लेगी तो उन्होंने दो अधिनियम और पारित कराये जिनमें से एक था कि जब तक सभी राज्य हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक अंग्रेजी को सहयोगी भाषा के रूप में चलाया जाएगा और दूसरा यह कि जब तक कोई एक राज्य भी हिन्दी को राजभाषा के रूप में नहीं अपनाएगा तब तक समूचे संघ की राजभाषा हिन्दी नहीं हो सकेगी । इन अधिनियमों के फलस्वरूप अंग्रेजी का प्रचलन आज भी बरकरार है और हिन्दी आज भी वनबास भोग रही है ।

इस पर टिप्पणी करते हुए डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने कहा कि "पहले हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाएँ सम्पन्न हो जाएँ, तब अंग्रेजी हटाई जाय, यह तर्क वैज्ञानिक नहीं है ।"

हिन्दी के प्रति इस दुर्व्यवहार का ही यह दुश्परिणाम है कि देश की स्वतंत्रता के 70 वर्ष के बाद भी केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा हिन्दी की निरन्तर उपेक्षा की जा रही है । तथा अंग्रेजी की अनिवार्यता यथावत् बनी हुई है । यहाँ तक की संघ लोक सेवा आयोग की प्राय: सभी प्रतियोगी परिक्षाओं में अंग्रेजी की अनिवार्यता का अभी तक अन्त नहीं हुआ है ।

गोरे यहाँ से चले गए किन्तु प्रशासनिक ढाँचा ज्यों का त्यों बना रहा। सैकड़ों वर्षों की गुलामी के कारण इस देश की जनता की तमाम शक्तियाँ नष्ट हो गई हैं । दिमाग पर अंग्रेज और अंग्रेजी का भूत इस कदर हावी है कि हम अपनी सर्वश्रेष्ठ संस्कृति को स्वयं ही नष्ट करने पर तुले हैं । हम स्वयं ही कहीं हीन भावना के शिकार हैं और ताज्जुब यह है कि हम इससे अनभिज्ञ हैं । तभी तो राष्ट्रभाषा हिन्दी की बात करने वाले अधिकांश मूर्धन्य, लब्धप्रतिष्ठ महानुभाव अंग्रेजी का प्रयोग करने का मौका चूकते नहीं हैं । राष्ट्रभाषा हिन्दी की बात करनेवाले लोगों में से अधिकांश अपना पत्रशीर्ष अंग्रेजी में ही छपवाते हैं, घर के दरवाजे पर नामपट अंग्रेजी में लिखते हैं, तार अंग्रेजी में देते हैं, धनादेश प्रपत्र एवं रेलवे आरक्षण प्रपत्र अंग्रेजी में ही भरते हैं । चेक अंग्रेजी में लिखकर उस पर हस्ताक्षर भी अंग्रेजी में ही करते हैं । हमारे मन में कहीं यह बैठा दिया गया है कि यह सब काम अंग्रेजी में ही करने चाहिए । कहीं हिन्दी में लिखने से लोग हमें छोटा न समझने लगें ।

मुझे याद है एक कवि सम्मेलन में मैं बुलाया गया था। कवि सम्मेलन बहुत बढ़िया रहा, सफल कवि सम्मेलन रहा। मैं मंच संचालक और कवि के रूप में उपस्थित था इसलिए कवि सम्मेलन सफल तो होना ही था। कवि सम्मेलन समाप्त होने के बाद एक भद्र महिला ने मुझसे आकर कहा कि वे अपनी संस्था के द्वारा कवि सम्मेलन का आयोजन करना चाहती हैं। इसलिए आप कृपया अपना पता इस डायरी में लिख दें मैंने उनके हाथ से डायरी लेकर देखा उसमें मुझसे पहले करीब चार-पाँच कवियों ने अपने पते लिखे थे, वे सारे के सारे अंग्रेजी में थे। मैं आश्चर्यचकित रह गया। वे महानुभाव जो मंच पर अभी थोड़ी देर पहले स्वयं को हिन्दी का सबसे बड़ा पक्षधर बता रहे थे वे ही अपना पता अंग्रेजी में बड़े गर्व से लिख रहे हैं।

इस स्थिति से छुटकारा पाने के लिए हमें स्वयं जागना होगा। अपनी अस्मिता को पहचानना होगा। प्राचीन समय से ही विश्व की सर्वश्रेष्ठ संस्कृति के रूप में सर्वोच्च आसन पर बिराजमान हमारी महान संस्कृति को पहचानना होगा और इसके लिए आवश्यकता है हमें मानसिक रूप से स्वतन्त्र होने की, अपनी संस्कृति, अपनी राष्ट्रभाषा और अपने राष्ट्र का गौरव अनुभव करने की, अपनी सुषुप्त शक्तियों को जागृत करने की। इसके लिए दृढ़ इच्छा शक्ति की आवश्यकता है। वस्तुत: राष्ट्रभाषा या राजभाषा का प्रश्न आज मात्र भाषा से नहीं बल्कि हमारी बुनियाद से जुड़ा है। बड़ी सावधानी और सतर्कता से हमें इस मुद्दे पर विचार करना होगा कि कैसे इस मानसिक गुलामी के चक्रव्यूह से निकला जाए। यह बहाना बेबुनियाद है कि हिन्दी में पुस्तकें नहीं हैं। हिन्दी में शब्द-भण्डार की कमी है। हिन्दी (या भारत की प्राय: अन्य सभी भाषाएँ) आज भी संस्कृत भाषा से अपना शब्द भण्डार समृद्ध करती हैं, जो सम्भवत: विश्व की समस्त भाषाओं की अपेक्षा सर्वाधिक समृद्ध भाषा है। तथाकथित समृद्ध आँग्ल भाषा के बृहत्तम शब्द-कोश में भी पाँच लाख से अधिक शब्द नहीं हैं। इनमें प्रयोग में आनेवाली शब्द संख्या एक लाख से अधिक नहीं है। इसके विपरीत संस्कृत में 1700 धातुएँ, 80 उपसर्ग तथा 20 प्रत्यय हैं। इस हिसाब से मूल शब्दों की संख्या 1700 x 80 x 20 = 2720000 (27 लाख 20 हजार) हो जाती है।

दूसरे संस्कृत एवं हिन्दी में शब्दों के योग से भी अन्यान्य अनेक शब्द बनते हैं। इस हिसाब से तो हिन्दी की शब्द संख्या आँग्ल भाषा की अपेक्षा कई गुना अधिक हो जाती है ।

भाषा का अर्थ है भीतर के प्रकाश को बाहर विकीर्ण करनेवाली आत्मशक्ति। भाषा के बिना व्यक्ति गूँगा है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी कहा करते थे कि राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है । अपनी भाषा का प्रयोग, उन्नयन एवं प्रतिष्ठापन करना प्रत्येक सभ्य एवं अस्मिता सम्पन्न व्यक्ति का सहज कर्तव्य है। विजयी राष्ट्र इस्राइल में सौ भाषाभाषी रहते हैं। वे विभिन्न देशों से आकर वहाँ बसे हैं, किन्तु वहाँ ऐसी व्यवस्था है कि वे इस्राइली बनने से पूर्व वहाँ की मातृभाषा समझी जानेवाली हिब्रू जैसी क्लिष्ट प्राचीन भाषा सीख लेते हैं और उसी का यथोचित प्रयोग भी करते हैं। आयलैंड के स्वतंत्र होने पर वहाँ के नेता ईमन डी-वेलेरा ने राष्ट्र की अपनी भाषा गैलिक को प्रतिष्ठापित करना चाहा तो कोई जानकार ही न मिला क्योंकि अंग्रेजी तब तक जनभाषा बन चुकी थी। बड़ी कठिनाई से एक मोची मिला जो गैलिक बोलता था। ईमन-डी-वेलेरा ने उससे सीखकर गैलिक को राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया ।

निरभिमानी और स्वार्थत्यागी व्यक्ति जिस देश में पैदा हुए हैं, उन्होंने उस देश की भाषा को अमर बना दिया है ।

– स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

यदि कोई कहे कि इस्राइल, आयलैंड इत्यादि छोटे राष्ट्र हैं, अत: वहाँ ऐसा सम्भव हो सकता है, तो संसार का सबसे बड़ा राष्ट्र चीन का उदाहरण सामने है, जहाँ सिक्कों, टिकटों इत्यादि तक पर चीनी भाषा का साम्राज्य है । उन्नति के चरम शिखर तक जिनकी पहुँच है ऐसे जापानियों ने भी भाषायी अस्मिता का परित्याग नहीं किया ।

चीनी, जापानी इत्यादि वर्णमालाएँ बहुत ही क्लिष्ट हैं । ये भाषाएँ न होकर चित्रभाषाएँ हैं, जिनमें प्रतीकों की संख्या सहस्रों तक जाती है तथा लेखन, टंकण, मुद्रण भी सरल नहीं है । किन्तु जहाँ देश भक्ति या राष्ट्रियता के गौरव का प्रश्न होता है वहाँ सारे कठिन काम सरल बन जाते हैं जबकि मृत प्राय म्रियमाण राष्ट्रों में सुविधा भोगी कायर निवास

करते हैं जिनका मूल मंत्र होता है 'सब चलता है।' सब चलना था तो स्वतन्त्रता संग्राम की भी क्या आवश्यकता थी ? जब तक 'सब चलता है' की अकर्मण्यता मौजूद है तब तक प्रगति संभव नहीं। जिस राष्ट्र की अस्मिता की प्रतीक भाषा उपेक्षित होती है, वह गौरव प्राप्त नहीं कर पाता। आज भारत की यही स्थिति।

"संसार की कोई भी भाषा ऐसी नहीं है जो सरलता और अभिव्यक्ति की क्षमता में हिन्दी की बराबरी कर सके। इसकी लिखाई और उच्चारण में आश्चर्यजनक अनुरूपता है। इसी कारण इसका लिखना और पढ़ना सबसे आसान है।"

– फादर कामिल बुल्के

हिन्दी किसी क्षेत्र की भाषा नहीं है। यह तो सम्पूर्ण राष्ट्र की अस्मिता का प्रतीक है। सन् 1807 ई. में टॉमस रोचक ने गिलक्रिस्ट को लिखा था कि "मैं कन्याकुमारी से काश्मीर तक या बंग से सिन्ध के मुहाने तक इस विश्वास से यात्रा की हिम्मत कर सकता हूँ कि मुझे हर जगह ऐसे लोग मिल जाएँगे जो हिन्दुस्तानी बोल लेते होंगे।" इसलिए राष्ट्रिय नेताओं ने हिन्दी को राष्ट्रिय एकता और अस्मिता के लिए अनिवार्य समझा लोकमान्य तिलक, केलकर तथा श्रीमती एनीबेसेन्ट ने भारत के सभी स्कूलों में हिन्दी की शिक्षा को अनिवार्य माना। जब स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व महात्मा गाँधी के हाथों में आया तो उन्होंने यह कह कर राष्ट्रीय अस्मिता के लिए भाषा की अनिवार्यता सिद्ध की कि – "मेरे लिए हिन्दी का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है।" 1918 ई. में कलकत्ता काँग्रेस के स्वागताध्यक्ष के रूप में बोलते हुए नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने हिन्दी में कहा – "हिन्दी प्रचार का उद्देश्य केवल यही है कि आजकल जो काम अंग्रेजी में किया जाता है वह आगे चलकर हिन्दी में किया जाएगा।" यह केवल महात्मा गाँधी, नेताजी का स्वर नहीं था, वरन् स्वामी दयानंद, अरविन्द, सरोजनी नायडू व रवीन्द्रनाथ ठाकुर का भी स्वर था। 1926 ई. में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने कहा था – "हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा तो है ही, आगे चलकर यही जन-तन्त्रात्मक भारत में राजभाषा बनेगी।"

भाषायी अस्मिता को त्याग कर हम कभी भी तरक्की और प्रगति नहीं कर सकते हैं। हम यदि चाहते हैं कि चीन, जापान और फ्रांस की तरह

हम भी सफलता के चरम शिखर तक पहुँचे तो हमें अपनी भाषा को पूर्णत: आत्मसात करना होगा। इस सत्य और तथ्य को हिन्दी के सबसे बड़े पक्षधर कविवर भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने अपनी पंक्तियों के द्वारा कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त किया है –

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल॥

अंग्रेजी पढ़ि के जदपि सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत दीन के दीन॥

बिबिध कला सिच्छा अमित ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहु भाषा माँहि प्रचार॥

आज भी साहित्य के क्षेत्र में हिन्दी ही एक मात्र भाषा है, जिसमें प्रत्येक प्रान्त के रचनाकारों की रचनाएँ मिल जाती हैं। बंगाल के राजा राममोहन राय, क्षितिमोहन सेन, मन्मथनाथ गुप्त, महाराष्ट्र के अनन्तराम शेबड़े, प्रभाकर माचवे तथा मुक्तिबोध, गुजरात के महात्मा गाँधी, स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, कर्णाटक के स्वामी मुक्तानन्द परमहंस, आचार्य विद्यासागर, केरल के स्वामी तिरूनाल, चन्द्राहासन तमिलनाडु के शंकरराजू नायडू , आंध्र के बाल कृष्णराव व पंजाब के यशपाल, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' आदि हिन्दी भाषा के ज्योतिर्धर राष्ट्रीय एकता के प्रतीक हैं। ये तो सिर्फ चन्द गिने हुए वे नाम हैं जिन्होंने हिन्दी साहित्यकार के रूप में हिन्दी साहित्य में कीर्तिमान स्थापित किये हैं। आज भी सम्पूर्ण भारत में एक भी ऐसा राज्य नहीं जहाँ हिन्दी के साहित्यकार न हों।

"हिन्दी संकीर्ण हिंदुत्व की भाषा नहीं है। उसके लेखकों और कवियों में सैकड़ों नाम उनके हैं जो धर्म में मुस्लिम, सिक्ख या क्रिस्तान थे।"

– डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर'

जिन राष्ट्रों में शिक्षा का माध्यम राष्ट्रभाषा है वहाँ शत-प्रतिशत शिक्षित हैं, किन्तु जहाँ शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा है वहाँ शिक्षितों का प्रतिशत बहुत कम है। इसका कारण है सर्जना एवं अभिव्यक्ति की भाषा का बिलगाव। हम संवेदनशील मनुष्य हैं। संवेदना का संबंध आत्मा से होता है और आत्मिक एकता का सूत्र अभिव्यक्ति के साधनों से जुड़ता है। आज

अभिव्यक्ति का माध्यम बदल गया है। आज हमारा सम्पूर्ण देश हिन्दी भाषा को समझता है। यह गौरव की बात है।

वे लोग जो अपनी भाषा को तिलाँजलि दे देते हैं और अपने घर का सारा वातावरण अंग्रेजीमय बनाने के प्रयास में लग जाते हैं, ऐसे लोग अपनी जड़ों से, अपनी संस्कृति से कट जाते हैं। इनके बच्चों की हालत उस अमर बेल की तरह हो जाती है, जिसमें जड़ नहीं होती और जो उसी वृक्ष का जीवन रस सोख लेती है जिसका आश्रय ग्रहण करती है। आजादी के बाद ऐसे ही लोगों की दूसरी पीढ़ी शासन कर रही है और तीसरी पीढ़ी कान्वेण्ट या पब्लिक स्कूलों और कॉलेजों में है। न तो उन्हें अपनी समृद्ध परम्पराओं का पता है, न वे अपने तीज त्यौहारों से परिचित हैं, भारतीय संस्कृति के मूलतत्व दया, त्याग, परोपकार और शील से तो उनका दूर का भी रिश्ता नहीं। यही बच्चे अपने पिता के चरण चिन्हों पर चलकर कल प्रशासन तंत्र पर हावी रहेंगे।

विश्व के 132 देशों में 3 करोड़ से अधिक भारतीय मूल के लोग बिखरे हुए हैं, जिनमें आधे से अधिक हिन्दी बोलते और समझते हैं। इस दृष्टि से देखें तो आज संसार में हिन्दी जाननेवाले अंग्रेजी जाननेवालों से अधिक हैं। यदि और गहराई से विचार करें तो और भी विस्मयकारी तथ्य उजागर होंगे। चीनी भाषा संसार में सबसे बड़ी भाषा के रूप में जानी जाती है। कहा जाता है कि राष्ट्र भाषा होते हुए भी चीनी जानने वाले लोग समूचे चीन में उपलब्ध नहीं हैं। जिस प्रकार हिन्दी भारत देश की राष्ट्र भाषा होते हुए भी सभी भारतीय हिन्दी नहीं जानते, वही स्थिति चीन में चीनी की और इंग्लैंड में अंग्रेजी की है। इसलिए भाषा विशेषज्ञों का मानना है कि कुल मिलाकर हिन्दी ही विश्व की सर्वाधिक समझी और पढ़ी जाने वाली भाषा है। यह भी निश्चित है कि विगत 50 वर्षों में हिन्दी की शब्द संख्या में जितना विस्तार हुआ है उतना विश्व की शायद ही किसी भाषा में हुआ हो। शब्द संख्या की दृष्टि से यह संसार की सबसे समृद्ध भाषा है।

यह कितने दु:ख की बात है कि आजादी मिलने के 70 वर्षों के बाद भी हमारे देश से अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त नहीं हो पाई। अंग्रेजी की अनिवार्यता प्रत्येक स्तर से हटाई जानी चाहिए। असली मुद्दा तो अंग्रेजी की अनिवार्यता और उसके प्रभुत्व को समाप्त करने का ही है। अंग्रेजी ने

ही भारतीय भाषाओं के अधिकार छीन रखे हैं। वह अधिकार उन्हें मिलना चाहिए। प्रान्तीय स्तर पर सारा कामकाज प्रान्तीय भाषाओं में हो और आन्तर्प्रान्तीय स्तर पर एवं केन्द्र सरकार का सारा काम राष्ट्र भाषा हिन्दी में हो तथा देश के प्रत्येक नागरिक को उसे पढ़ने का अवसर मिले इसके लिए प्रत्यत्नशील होना है।

यदि सचमुच हमारे देश में प्रजातन्त्र है तो उसका सारा काम जनता की भाषा में होना चाहिए। पराये देश की भाषा को अपने ऊपर लादे रहना एक सार्वभौम प्रभुसत्ता सम्पन्न गणतन्त्र के लिए कलंक है। प्राचीनता, साहित्य-गौरव, व्यापकता, संविधान-स्वीकृति, लोकतन्त्र सभी दृष्टियों से राजभाषा पद पर हिन्दी की प्रतिष्ठा हमारा राष्ट्रीय दायित्व है और यही हमारी राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान है।

• • •

गुजरात के समकालीन हिन्दी गीतकार

गुजराती और हिन्दी का चोली-दामन का साथ प्राचीन काल से रहा है यह निर्विवाद सत्य है। हिन्दी की सेवा एवं समृद्धि में प्रारम्भ से अद्यावधि गुजराती के कृतिकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में इस अहिन्दी भाषी प्रदेश की जितनी प्रशंसा की जाए, कम ही है। स्वातंत्र्योत्तरकाल में तो हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए कई साधन उपलब्ध हैं। इस गुर्जर भूमि पर गीतकारों के साथ-साथ अच्छे और सुलझे हुए ग़ज़लकारों ने भी अपना स्थान बनाया है। लेकिन यहाँ हमारा प्रतिपाद्य केवल गुजरात के समकालिन हिन्दी गीतकार और उनकी गीति-काव्यकला है।

गीत कवि के अपने संवेदनशील हृदय की मंजु-मधुर अभिव्यक्ति है। गीत का जन्म कविता और संगीत की समन्वित भाव भूमि पर होता है। समकालीन युगबोध बिम्ब, मिथ, सामाजिकता एवं आंचलिकता अच्छे गीत के तत्त्व हैं। गीतों में भावुकता और कल्पना के साथ-साथ यथार्थ की व्यंजना भी अपेक्षित है। संगीत के बिना भी गीत को पढ़ते ही जब पाठक का मन खुद ब खुद धीरे-धीरे डोलने लगे, झूमने लगे तो समझिए की गीत सार्थक हो गया। गीत तो छन्दों का मधुबन है जिसमें कहीं गुलाबी सुगंध है, कहीं नयनरम्य हरीतिमा है, कहीं भ्रमर की मदमस्त अनुगूँज है, कहीं काँटों-सी चुभन है, कहीं बासन्ती हवा का सुखद झोंका है, कहीं सावन का झूला है तो कहीं अचानक आसमान से टूटे सितारों और वृक्षों से झरे पुष्पों के प्रति करुणाकलित हृदय की पुकार है। प्राचीनकाल से ही इस गुर्जर भूमि ने हिन्दी को अच्छे गीतकार दिये हैं। प्राचीनकाल के गीत प्राय: ब्रजभाषा में ही प्राप्त होते हैं। एक समय था जब अपनी कोमल कान्त पदावली के कारण कवियों की ऐसी मानसिकता बन गई थी कि अगर आप काव्य लिखना चाहते हैं तो ब्रजभाषा में ही लिखें। भारत के सभी प्रदेशों के प्राचीन कवियों ने इस ब्रजभाषा को अपनी अभिव्यक्ति काव्य-कला का माध्यम बनाया है।

गुजरात के प्राचीन साहित्यकारों में नरसिंह मेहता के ब्रजभाषा में रचित भक्ति-गीत आज भी श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते हैं। कवि अखा ने भी

साधिकार इस भाषा में कलम चलाई है। मीराबाई के नाम से कौन परिचित नहीं है ? कृष्ण की दीवानी मीराँ ने भी ब्रजभाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था। आज भी मीराँबाई के भजन घर-घर में गाए जाते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर काल में ब्रजभाषा का स्थान धीरे-धीरे खड़ी बोली ने ले लिया है और गुजरात के समकालीन गीतकारों ने भी खड़ी बोली हिन्दी में सशक्त रचनाएँ दी हैं प्राचीनकाल के गीतों में नायिका के रूप-सौन्दर्य या प्रेम की अभिव्यक्ति हुआ करती थी या फिर वे भक्ति-भावना से आप्लावित हुआ करते थे। किन्तु आज के गीत आम आदमी के संघर्ष को व्यक्त करते हुए परिवेश की प्रामाणिक अभिव्यक्ति हैं। समकालीन हिन्दी गीत के प्रतिपाद्य कुछ इस प्रकार हैं (1) गीतों में राजनीतिक एवं सामाजिक विसंगतियाँ (2) ईश्वरीय प्रेम (3) प्रकृति-प्रेम (4) व्यक्तिनिष्ठ प्रेम (5) आम आदमी की घुटन एवं कुण्ठाएँ (6) राजनीतिक अराजकता पर करारे व्यंग्य।

गीतों में राजनीतिक एवं सामाजिक विसंगतियाँ :

गुजरात के समकालीन हिन्दी गीतकारों के गीतों में राष्ट्रीय चेतना का स्वर स्पष्ट सुनाई देता है। स्वतन्त्रता के बाद राष्ट्र को खण्ड-खण्ड होने से बचाने के लिए गीतकारों ने अपनी कलम के माध्यम से अथक प्रयत्न किये हैं और कर रहे हैं। साथ ही साथ सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगतियों के स्वर भी सुनाई देते हैं। आज के गीतों में राजनीति और प्रशासन के नाम पर देश में व्याप्त अराजकता के विष को दूर करने की तत्परता, सामाजिक विसंगतियों से निढाल मनुष्य की विद्रुपता तथा चारों ओर मशीनी युग से संत्रस्त मानवता के करुण चित्र अनेकत्र देखने को मिलते हैं। मनुष्य की बढ़ती लालसा-सत्तालोलुपता ने उसकी नैतिकता को नष्ट कर दिया है। राजनीतिक विसंगति के विष को डॉ. किशोर काबरा ने बड़े ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। वे आज की सडाँध भरी जीवन-व्यवस्था और तथाकथित खोखली आदर्शवादिता के सिरहाने आम आदमी की पीड़ा को देख कराह उठते हैं –

सड़े-गले बाजार, रुग्ण जीवन की राहें,
चौराहे सब मौन खड़े फैलाकर बाँहें।

गलियाँ हैं सुनसान, भीड़ खो गई भीड़ में,
आम आदमी लुंज-पुंज ले रहा कराहें ।
देना हो तो दो मुझको सच्चा अनुशासन,
दु:शासन से कैसे रास थमेगी मेरी ?

राष्ट्र के अनुशासन पर विम्ब के माध्यम से तो बहुत कुछ कहा गया है किन्तु अहमदाबाद में हास्य-व्यंग्य के एक मात्र गीतकार श्री ओंकार अग्निहोत्री बड़े ही स्पष्ट शब्दों में राजनीतिक विसंगति का यथार्थ चित्रण करते हुए कहते हैं –

सोने की चिड़िया था भारत,
था यह जग से न्यारा ।
कौन घोलता जहर धर्म का ?
जलता है यह वतन हमारा ।
उत्तर-दक्षिण-पूरब-पश्चिम,
भ्रष्टाचारी पनप रहे हैं ।
चोर लफंगे औ' मुस्टंडे,
पूर्ण राष्ट्र को हड़प रहे हैं ।
प्रजातन्त्र के नाम यहाँ पर,
भीड़ तन्त्र का जय-जयकारा ।

इस प्रकार राजनीतिक एवं सामाजिक विसंगतियों के विष-वृक्ष पर कुठाराघात करता हुआ और सामाजिक विषमता तथा मानवीय मूल्यों की गिरावट से जुड़े प्रश्न-चिह्नों की बौछार करता हुआ यह दृश्य देखिए –

सबके सब कातिल बैठे हैं,
किस पर विश्वास किया जाय ?
उजियाले का लवलेष नहीं,
प्रात: है कोसों दूर कहीं ।
दीपक रीता, तीली गीली,
किस तरह प्रकाश किया जाए ?

– श्री चन्द्रपालसिंह यादव

सामाजिक विद्रूपताओं के बीच मानवता की पहचान खोने के भय से चिंतित दुखी प्रणव भारती का यह स्वर देखिए –

इन्सानी रिस्तों की काया क्यों दरकी है ?
सीने पर मौसम की छाया क्यों फरकी है ?
घिर आए सावन के मेघ, फुहार नहीं है,
मोसम तो प्यारा, पर सबको प्यार नहीं है ।
वर्ग, जाति, भाषा की साँसे क्यों कड़की हैं ?
सीने पर मौसम की छाया क्यों फरकी है ?

राजनीतिज्ञों एवं मठाधीशों की खोखली आदर्शवादिता के कारण समाज में पनप रहे साम्प्रदायिक विष से चिन्तित कवि का यह दृश्य देखिए –

भूख-गरीबी-बेकारी, क्या लड़ने को नाकाफी हैं ?
खोद रहे क्यों राम-शिला, बाबर के ठौर-ठिकाने लोग
– श्री सुरेश शर्मा 'कान्त'

मंदिरों से राम निकले, धनुष की टंकार लेकर,
गुरूद्वारों से आ रहे गोविंद भी तलवार लेकर ।
देखिए मैदान में रैदास-तुलसी भी खड़े हैं,
मस्जिदों से आ रही आवाज अब ललकार देकर ।
आज का यह सभ्य नर सम्पूर्ण नंगा हो गया है,
यह हवा का दौर कैसा, चमन सहरा हो गया है ।

प्रयोगकालीन या साठोत्तरी हिन्दी गीत साहित्य में हमें कथ्यगत एवं शिल्पगत दोनों प्रकार की नूतन विशेषताएँ दिखाई देती हैं। प्रयोग और परम्परा के विविध सोपानों को पार करते हुए आज इस गुर्जर-भूमि पर हिन्दी गीत अपने चरम शिखर की बुलंदी तक पहुँच चुके हैं ।

गीतों में ईश्वरीय प्रेम :

प्रेम तो वह शाश्वत एवं सनातन सत्य है जिसे कभी नकारा नहीं जा सकता। चारों तरफ लाखों समस्याएँ होने के बावजूद प्रेम अमर है। दुर्घटनाएँ हुईं युद्ध हुए, प्रलय हुआ और सब कुछ खत्म हो गया, किन्तु प्रेम था, है और रहेगा । प्रत्येक व्यक्ति का प्रेम का अपना दृष्टि-कोण रहा है । कुछ ईश्वरीय प्रेम को प्रधानता देते हैं –

अन्तर्ज्योति जगे प्रभु मन में,
बहुत हो चुका तम में जीते,
दु:ख पीड़ा के आँसू पीते।
कृपा करो ऐसी प्रभु मुझ पर,
जगे प्रेम सबके प्रति मन में।

– श्री कैलाशनाथ तिवारी

डॉ. रामकुमार गुप्त से शायद ही कोई रस छूटा है। किन्तु शृंगार रस में आपकी रचनाएँ बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं। ऐसा लगता है जैसे रसराज शृंगार पर आपका विशेष अधिकार है। भक्ति-रस में लिखते समय गुप्तजी इतने तल्लीन हो जाते हैं कि कवि और भगवान के बीच सख्यभाव का सम्बन्ध झलकता है। गुप्तजी भाव विभोर होकर भगवान को उलाहना-सा देते हुए कहते हैं।

गोकुल के घनश्याम।
तुम तो हुए गगन के बासी
तुमको क्या सारा 'ब्रिन्दावन'
वन-वन भटके बन संन्यासी
मधुबन की यादें बिसराकर,
गोरी की गागर ठुकराकर,
तुम तो हुए शहर के राजा
तुमको क्या बंशीवट वीरान बने।

राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक आपसी मतभेद भुलाकर मिलजुल कर रहे जिससे राष्ट्र का उत्थान हो और भारत माता का मान बढ़े। ऐसी भावना भारत के जन-जन में भरने के लिए कविवर श्री रामअवधेश त्रिपाठी 'वियोगी', प्रभु से प्रार्थना करते हुए कहते हैं –

परस्पर प्रेम एकता भाव,
भरे जन-जन में दिव्य प्रभाव,
अहिंसा, सत्य, शील, सुविचार
सुशोभित करे नगर हर गाँव
बढ़े भारत माता का मान
दयानिधि, दीजे यह वरदान।

ईश्वरीय प्रेम के साथ-साथ हमारी भारतीय संस्कृति में 'मातृ देवोभव' को भी स्वीकार किया गया है। डॉ. रमाकान्त शर्मा मातृ--वन्दना करते हुए कहते हैं –

मातृ-चरण-वंदन-सुख पाऊँ
घायल उर-तन,
व्यथित-मनुज-मन
नेह नीर धोऊँ
नित अग-जग
नव-घन बन बरसूँ सुख पाऊँ।
मधुर गीत जीवन भर गाऊँ।

प्रकृति-प्रेम :

ईश्वर की आराधना के साथ-साथ गीतकारों के भावुक हृदय ने अपने प्रकृति-प्रेम का भी परिचय दिया है। प्रकृति ईश्वर का प्रतिबिम्ब मानी जाती है। जंगल, पर्वत, घाटियाँ, बादल, हरे भरे खेत-खलिहान, गर्जना करते हुए समुद्र की उत्ताल तरंगे, नदियों का स्वच्छ-सुन्दर बहता हुआ जल, पक्षियों का कलरव, पहाड़ की ऊँची चोटियों से गिरनेवाला प्रपात-प्रकृति के इन सुन्दर मनोहारी दृश्यों से भावुक कवि हृदय कैसे प्रेम न करता ? शायद ही कोई ऐसा गीतकार हो जिसके हृदय को प्रकृति ने न छुआ हो। यही कारण है कि प्रकृति प्रेम के गीत अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। प्रेम की व्यापकता के साथ विरह-मिलन की मांसलता भी है। बिम्बात्मक लाक्षणिकता के साथ अज्ञात उदासी की जुगलबन्दी भी है। कतिपय दृश्य प्रस्तुत हैं –

गोधूली बेला में प्रेम-लगन फेरा है,
पँखियों के कलरव ने आसमान घेरा है।
पाटल-सी पलकों में लाजभरे बोल हैं,
सखियों के संग साथ छूटे अनमोल हैं।
क्षितिजों की कोरकों में लालिमा का डेरा है,
अन्तर की प्रीत का रंग यह सुनहरा है।
सिन्दूरी डोली में संध्या की दुल्हन है,
बदरा का घूँघट है, रतनारी चितवन है।

रस भीनी रश्मियों को बंसरी ने टेरा है,
पश्चिम के माथे पर सूरज का सेहरा है ।

— डॉ. द्वारकाप्रसाद साँचीहर

हरियाये बिरवों की आँखों में सपने हैं,
लतिका ने पहन लिए गहनों पर गहने हैं,
धूप के दुशाले में धरा बनी दुल्हन है,
पियरायी सरसों भी देख रही दर्पण है ।
पवन घूमता है मस्ती में ।

— श्री रमेश चन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

डॉ. रामदरश मिश्र एक लम्बे अरसे तक अहमदाबाद के सेंट जेवियर्स कॉलेज से जुड़े रहे और यहीं रहकर आपके प्रारम्भिक दो काव्य-संग्रह (बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ, पथ के गीत) का प्रकाशन भी हुआ। इसलिए डॉ. रामदरश मिश्र को यहाँ उद्धृत करने का मोह संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं —

बादल चले जा रहे ।
संध्या को लौट मेले से
जैसे राही हारे
बादल चले जा रहे ।
भरे-भरे पोखर तालों में
काँप रही उजली परछाँही ।
धान विदा दे रहे स्तब्ध क्षण,
भर छाँहों को दे गलबाँही ।
प्रीति पिला परदेसी चले,
रहे नयना मतवारे,
बादल चले जा रहे ।

आकाशवाणी अहमदाबाद के केन्द्र-निदेशक श्री मदनमोहन 'मनुज' के गीत अपने साथ गाँव की मिट्टी की महक लिये हुए हैं। परदेश में रहनेवाले किसी भी सहृदय व्यक्ति को श्री 'मनुज' के गीत देश की यादों से भिगो जाते हैं। अण्डमान–निकोबार में आकाशवाणी के केन्द्र-निदेशक के पद पर कार्य

करते हुए, अण्डमान–निकोबार पर लिखी आपकी कविता पूरे भारत वर्ष में गूँज उठी है। यहाँ उद्धृत गीत में अपने गाँव एवं खेत-खलिहान की यादों को ताजा करते हुए डॉ. मनुज कहते हैं –

मटियारी सुधियों की साँझ,
आँखे फिर भर आईं।
मदिर गंध फागुनी बयार
बगिया फिर बौराई,
अलसाई नदिया की धार
कलियाँ नत मुस्काईं।
अँधियारी मावस की रात
मन में बरबस छाई।

व्यक्तिनिष्ठ प्रेम-सौन्दर्य :

ईश्वर-प्रेम और प्रकृति-प्रेम के साथ ही प्रेम का एक और पहलू है जिसे हम व्यक्तिनिष्ठ प्रेम कहते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए कि ईश्वरीय प्रेम का प्रथम सोपान व्यक्तिनिष्ठ-प्रेम है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। अपनी कोमल कान्त पदावली के लिए प्रसिद्ध ब्रजभाषा में नायिका के रूप-सौन्दर्य के वर्णन अपने आप में अनूठे हैं। इतना सुन्दर चित्रण अन्यत्र देखने को नहीं मिलता किन्तु आज खड़ी बोली में लिखे जा रहे गीतों में रूप-सौन्दर्य भी कुछ कम नहीं है। कुछेक चित्र दृष्टव्य हैं –

बिंदिया बादल में छिप जाए,
गोरी घूँघट में शरमाए,
रूप की पूनम बाँहों में,
सपनों का संसार लुटाये,
आज मन बहका-बहका गाए।

– डॉ. रामकुमार गुप्त

वृन्दावन की कुंज गली की सौरभ महकी प्राण में,
झनक उठी राधा की पायल मन-मतवाले गान में।
मीठी मधुर मुरलिया बाजे यमुना तट पर धीरे,
मैंने रास रचाया राधा ! उर अन्तर के तीरे।

मेरे अन्तर की सीमा में, राज्य किसी के भोले मन का,
मेरा और तुम्हारा नाता, जितना राधा और किशन का ।

– डॉ. अरविन्द जोशी

आम आदमी की घुटन एवं कुण्ठा :

स्वातंत्र्योत्तर काल में आधुनिकीकरण, नई तकनीक और शहरीकरण से आम आदमी की समस्याओं में इजाफा ही हुआ है । जैसे-जैसे विज्ञान ने तरक्की की है उसी प्रमाण में प्रकृति अपना रौद्र रूप बताती गई । दवा, निदान आदि की खोज पूर्ण ही नहीं हो पाती है कि कोई न कोई नई बीमारी जन्म ले लेती है । गुजरात के हिन्दी गीतकारों ने आम आदमी की घुटन का चित्रण भी बखूबी किया है । मशीन की तरह आम आदमी की भागती-दौड़ती ज़िन्दगी रोज की आपा-धापी और कुण्ठाओं को खड़ी बोली में गुजरात के समकालीन गीतकारों ने बड़ी ही कलात्मकता से उभारा है ।

गीत कम, सित्कारियों का बोध ज्यादा,
गीत कम, मजबूरियों पर क्रोध ज्यादा ।
पी रहे हैं प्यास, पर पानी नहीं है,
वासना है, प्यार का मानी नहीं है ।
इस महानगरी की अद्‌भुत रीत वाले,
कनसुरे गाते मिले ये गीतवाले ।

– डॉ. दयानन्द जैन

इन सबके बावजूद गुजरात का समकालीन हिन्दी गीतकार निराश नहीं है । वह जानता है कि परिवर्तन ही जीवन है और यह तभी सम्भव है जब जागृत साहित्यकार अपनी कलम से व्यक्ति को झिंझोड़ता रहे, उसे उत्साह दिलाता रहे, आशा बँधाता रहे । ऐसा ही आशावादी स्वर झलकता है श्री भगवानदास जैन के गीतों में । वे निढ़ाल, निराश मनुष्य को गोया आशा का संबल देते हुए कहते हैं –

कोई भी अब पेट की खातिर,
होगा कभी गुलाम नहीं ।
रह न सके बेकाम कोई,
अब दम तोड़े गुमनाम नहीं ।

साँसों पर अब सबका हक है, कोई ठेकेदार नहीं ।
ऐसी गली, बजार न बस्ती ऐसा कोई द्वार नहीं।
जहाँ स्वप्न के हिडोलों पर झूला झूले प्यार नहीं ।

गीतों के साथ-साथ नवगीत भी काफी लिखे गये हैं । गुजरात में आधुनिक हिन्दी साहित्य को निरंतर उत्कर्ष की ओर ले जानेवाले गुजरात के बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार डॉ. अम्बाशंकर नागर ने गीत में बिम्ब का महत्त्व बताते हुए जो नवगीत लिखा है वह आज के तरुण गीतकारों के लिए अत्यंत प्रेरणादायी है । कुछ पंक्तियाँ यहाँ दृष्टव्य हैं –

जो लिखो अच्छा लिखो,
अनुभूति से सच्चा लिखो ।
काव्य लिखना हो तो बिम्बों में लिखो ।
बिम्ब भी ऐसे कि जिनमें तुम दिखो ।

इस लेख को पूर्ण करने से पहले राजनीतिक एवं सामाजिक विसंगतियों से भरपूर मैं अपना यह बहु-प्रसिद्ध गीत आपकी सेवा में प्रस्तुत करना चाहता हूँ । प्रत्येक कवि सम्मेलन में मुझसे इस गीत की फरमाईश होती रही है । इस गीत में समकालीन राजनीतिक और सामाजिक विद्रूपता का कुरूप चेहरा स्पष्टत: उजागर हुआ है –

लोग न जाने इस दुनिया में कैसे जिन्दा रहते हैं ।
जहरीली वायु का सेवन ही तो नित दिन करते हैं ॥
फूल में जितने दल ज्यादा हों उतना ही होगा कमजोर ।
डगर-डगर पर नजर आ रहे बिखरे काँटे चारों ओर ॥
भँवरे जाने इस बगिया में कैसे गाया करते हैं ।
लोग न जाने इस दुनिया में कैसे जिन्दा रहते हैं ॥
मौन हुआ सागर तो घटना कोई घटने वाली है ।
शोर बढ़ा इतना की अब तो धरती फटनेवाली है ॥
चमक-चमक कर तडक-तडक कर बादल आग उगलते हैं ।
लोग न जाने इस दुनिया में कैसे जिन्दा रहते हैं ॥
बगुलों का सम्मान किया है हंसों को दुत्कार दिया ।
गीत सराहे कौवों के और कोयल को फटकार दिया ॥

दादुर की टर-टर पर देखो झींगुर खूब उछलते हैं ।
लोग न जाने इस दुनिया में कैसे जिन्दा रहते हैं ।।

भक्षण करता सर्प का फिर भी जहरिला नहीं बनता मोर ।
सन्तों के आश्रम में अब तो दिखते हैं बस आदमखोर ।।
सिंहो की इस भूमि पर अब गीदड़ शासन करते हैं ।
लोग न जाने इस दुनिया में कैसे जिन्दा रहते हैं ।।

स्थानाभाव के कारण यहाँ पश्चिमांचल के सभी गीतकारों के उद्धरण नहीं दिये जा सकते हैं। उद्धृत गीतकारों के अलावा गुजरात के कुछ और सशक्त एवं उल्लेखनीय गीतकारों के नाम इस प्रकार हैं – डॉ. रामेश्वरलाल खण्डेलवाल 'तरुण', श्री विष्णु विराट, डॉ. शमशेर सिंह, श्री कृष्णपाल सिंह भदौरिया, श्री अविनाश श्रीवास्तव, सुश्री सुधा श्रीवास्तव, श्री अश्विनी कुमार पाण्डेय, सुश्री संतोष लंगर 'सुहास', श्री नरेन्द दवे, श्री गोपाल शुक्ल, श्री हरिप्रसाद शुक्ल, श्री सुलभ धंधूकिया श्री हसित बुच, श्री जयसिंह 'व्यथित' श्री चन्द्रमोहन तिवारी आदि ।

इस प्रकार हम निष्कर्ष रूप में यह स्पष्ट कह सकते हैं कि गुजरात में समकालीन हिन्दी गीतकारों का गीत-साहित्य जिन नूतन रंगों और आयामों से होकर गुजर रहा है, उसे देखते हुए हम जहाँ गुजरात की समकालीन गीत-सम्पदा के प्रति अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं, वहीं दूसरी ओर भावी सुखद संभावनाओं के प्रति पूर्णतः आश्वस्त भी हैं ।

• • •

वैश्विक धर्म : अपने कर्तव्य का पालन

विश्व में कुल २१३ देश हैं। इन तमाम देशों में न जाने कितने धर्म और सम्प्रदाय अस्तित्व में होंगे इसकी पूर्ण जानकारी एकत्रित करना लगभग नामुमकिन है। ना जाने कितने भगवान, कितने अल्लाह, कितने सुपर पावर अस्तित्व में हैं यह कहना भी असम्भव है। लाखों की तादाद में धर्म ग्रन्थ होंगे हजारों की तादाद में धर्म गुरु होंगे। वैश्विक स्तर पर इतने धर्म, इतने सम्प्रदाय, इतने सुपर पावर, धर्म ग्रन्थ और धर्म गुरु ये सभी बस एक ही काम में लगे हैं, और वो काम है आदमी को आदमी बनाना, मनुष्य को मनुष्य बनाना, व्यक्ति को जानवर बनने से रोकना। आदमी में आदमीयत जगाना। विश्व में प्रेम और भाई चारे की भावना का प्रचार-प्रसार करना हिंसा खत्म करके अहिंसा की ज्योति जलाना, प्रेम का अलख जगाना। ये सभी अपने इस कार्य में दिन-रात लगे हैं। इसके बावजूद हजारों वर्ष से आज तक पूर्ण सफलता नहीं मिल पाई है। आज भी हम यह दावे से नहीं कह सकते हैं कि धर्म - सम्प्रदाय ने, धर्म गुरुओं और धर्म ग्रन्थों ने मनुष्य के भीतर के जानवर को समाप्त कर दिया है। हजारों - हजारों वर्ष पहले, अर्थात् मानव के आदि काल से लेकर आज आधुनिक काल तक इतनी कोशिश करने के बाद भी हैवानियत को नष्ट नहीं कर पाए हैं।

जिन्हें हम भगवान मानते हैं, जिन्हें हम अल्लाह, वाहे गुरु ईशा या सुपर पावर मानते हैं, उस धर्म के, उस सम्प्रदाय के हजारों वर्षों के प्रचार-प्रसार के बावजूद ऐसा क्यों है कि आज भी मनुष्य के भीतर से हैवानियत पूर्णतः नष्ट नहीं हो पाई है। कई दृष्टांत तो ऐसे भी सामने आए हैं, जिसमें धर्म गुरु स्वयं ही भटक गये हैं। वे स्वयं ही हिंसा और निन्दनीय कार्यों में लिप्त पाए गए हैं। शारीरिक इन्द्रियों को, मन को, वश में करने के उपदेश देनेवाले उपदेशक ही इन्द्रियों के भोग विलास में आकण्ठ डूबे नज़र आए हैं, और आज भी यह स्थिति कायम है। इसलिए अन्ततः मन में यह प्रश्न उठता है कि आखिर यह स्थिति क्यों है ? क्या हमारे भगवान हमारे सुपर पावर मात्र एक कल्पना है ? धर्म- सम्प्रदाय, धर्म-ग्रन्थ, धर्मोपदेशक क्या यह सब ढकोसला है ? दिखावा है ? या फिर उस सुपर पावर ने इस विश्व की रचना

ही ऐसी की है कि यह सब एक चक्र की तरह चलता रहे। चलिए हम अपने छोटे से मस्तिष्क और बहुत कम जानकारी और उससे भी अल्प ज्ञान के सहारे इन प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयत्न करें।

उत्तर खोजने के प्रयास में सर्वप्रथम प्रयत्न एक दृष्टांत के द्वारा करते हैं। श्री भगवतीचरण वर्मा हिन्दी साहित्य में बहुत बड़े साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित और समादृत हैं। श्री भगवतीचरण वर्मा जितने प्रतिष्ठित और मूर्धन्य साहित्यकार हैं उससे भी अधिक प्रसिद्ध और बहु चर्चित उनका उपन्यास है "चित्रलेखा"। इस उपन्यास पर से फिल्म भी बनाई गई है। इस उपन्यास में विविध दृश्य और दृश्यों की विविधता इसका विशेष आकर्षण है। सबसे खूबसूरत और मजेदार तथ्य यह है कि इस उपन्यास की रचना का आधार मात्र एक वाक्य का एक प्रश्न है। एक वाक्य के एक छोटे से प्रश्न के उत्तर को खोजने के लिए श्री भगवतीचरण वर्मा ने इस उपन्यास की रचना की है और उपन्यास के अन्त में आदरणीय वर्मा जी अपने अन्दाज में अपने दृष्टिकोण से उस प्रश्न का उत्तर भी देते हैं। पाठक उस उत्तर से सहमत हो यह न तो आवश्यक है और न ही अनिवार्य है। आइए सबसे पहले हम उस प्रश्न को जाने, उससे परिचित हो जाएँ कि आखिर वह प्रश्न क्या है ? उपन्यास का प्रारम्भ ही इस एक वाक्य से होता है।

श्वेतांक ने पूछा – "और पाप !"

यही वाक्य 'चित्रलेखा' उपन्यास का प्रथम वाक्य है और यही इस उपन्यास की आधार भूमि है। रत्नाम्बर नामक सिद्ध पुरुष के दो शिष्य हैं। श्वेतांक और विशाल देव, वे अपने गुरु से यह प्रशन करते हैं। इस विकट प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए महाप्रभु रत्नाम्बर अपने दोनों शिष्यों को पाटलीपुत्र के दो महान व्यक्तियों के पास एक वर्ष के लिए भेज देते हैं। इन दोनों में से एक सिद्ध योगी है और दूसरा सफल और सुखी जीवनयापन करनेवाला सांसारिक व्यक्ति है। महाप्रभु रत्नाम्बर दोनों शिष्यों को एक वर्ष की अवधी के लिए इन दोनों के पास भेज देते हैं, और यह तय होता है कि एक वर्ष के पश्चात वे दोनों शिष्य यहीं इसी स्थान पर पुन: मिलेंगे।

एक वर्ष के पश्चात श्वेतांक और विशालदेव दोनों शिष्य पुन: उसी कुटिया में अपने गुरु महाप्रभु रत्नाम्बर के सम्मुख प्रस्तुत होते हैं। महाप्रभु रत्नाम्बर दोनों से कहते हैं कि एक वर्ष तक वे जिनके साथ रहे हैं उनके साथ रहते हुए उन्होंने जीवन को बहुत नजदीक से देखा, उसके सुख-दु:ख एवं उसके सभी पहलुओं

से गुजरे हैं, तो अब बताओं कि "पाप क्या है ?" श्वेतांक और विशाल देव दोनों शिष्य जिनके पास एक वर्ष रहे उनकी प्रशंसा करते हुए दूसरे को पापी बताते हैं। श्वेतांक योगी के पास रहा था इसलिए वह योग की महत्ता प्रतिपादित करते हुए सांसारिक व्यक्ति को पापी बताता है, और विशालदेव सुखी और सफल जीवन यापन करनेवाले के पास रहा तो वह सांसारिक कर्तव्यों को श्रेष्ठ बताते हुए योगी को दायित्वों से भागता हुआ बताकर उसे पापी बताता है। अपने दोनों शिष्यों की बात सुनकर अन्ततः गुरु रत्नाम्बर पाप की परिभाषा बताते हैं। भगवतीचरण वर्मा ने 'चित्रलेखा' उपन्यास में गुरु रत्नाम्बर के माध्यम से पाप की जो परिभाषा प्रकाशित की है वह अक्षरशः मैं यहाँ उद्धरित कर रहा हूँ।

रत्नाम्बर कह उठे –"तुम दोनों विभिन्न परिस्थितियों में रहे और तुम दोनों की पाप की धाराएँ भिन्न हो गई हैं। तुम लोग जा रहे हो– तुम्हारी विद्या पूर्ण हो चुकी। अब अपना अन्तिम पाठ मुझसे सुने जाओ –"

"संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की मनः प्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है – प्रत्येक व्यक्ति इस संसार के रंगमंच पर एक अभिनय करने आता है। अपनी मनः प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पाठ को वह दुहराता है यही मनुष्य का जीवन है। जो कुछ मनुष्य करता है वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है – विवश है। वह कर्ता नहीं है, वह केवल साधन है। फिर पुण्य और पाप कैसा ?"

"मनुष्य में ममत्व प्रधान है। प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है। केवल व्यक्तियों के सुख के केन्द्र भिन्न होते हैं। कुछ सुख को धन में देखते हैं, कुछ सुख को मदिरा में देखते हैं, कुछ सुख को व्यभिचार में देखते हैं, कुछ त्याग में देखते हैं – पर सुख प्रत्येक व्यक्ति चाहता है। कोई भी व्यक्ति संसार में अपनी इच्छानुसार वह काम न करेगा, जिसमें उसे दुःख मिले – यही मनुष्य की मनः प्रवृत्ति है और उसके दृष्टिकोण की विषमता है।"

"संसार में इसीलिए पाप की एक परिभाषा नहीं हो सकी – और न हो सकती है। हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं, हम केवल वह करते हैं जो हमें करना पड़ता है।"

उपर्युक्त परिभाषा श्री भगवती चरण वर्मा का अपना व्यक्तिगत दृष्टिकोण है। यह सत्य है कि सुख प्रत्येक व्यक्ति चाहता है और यह भी सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति के सुख के केन्द्र भिन्न-भिन्न होते है। किन्तु स्वयं के सुख पाने की लालसा में व्यक्ति यदि दूसरे को दुख पहुँचाता है, तो यह अनुचित है। मदिरा पान करना व्यक्तिगत सुख का केन्द्र हो सकता है, किन्तु मदिरापान के पश्चात अनर्गल प्रलाप करना और किसी को मानसिक या शारीरिक क्षति पहुँचाना गलत है। व्यभिचार करना कदाचित व्यक्तिगत सुख का केन्द्र हो सकता है किन्तु व्यभिचारी व्यक्ति द्वारा प्रत्येक विदुषि सन्नारी को कुदृष्टि से देखना और उससे व्यभिचार करने की चेष्टा करना तो सरासर निकृष्टता है। चोरी, लूटपाट, छल, प्रपंच करना व्यक्तिगत सुख के केन्द्र हो सकते हैं, किन्तु किसी को इससे हानि हो रही है तो यह गलत है। विश्वासघात करना, राष्ट्र द्रोह करना व्यक्तिगत सुख के केन्द्र हो सकते हैं, किन्तु यह प्रवृत्ति भी गलत है। अब इस 'गलत', 'अनुचित', 'निष्कृष्टता' को 'पाप' कहो या कुछ और यह अपने विवेक पर निर्भर करता है।

श्री भगवतीचरण वर्मा के अनुसार "कोई भी व्यक्ति संसार में अपनी इच्छानुसार वह काम न करेगा, जिसमें उसे दुख मिले।"

किन्तु कई बार ऐसा होता है कि व्यक्ति को मजबूरी में कुछ ऐसे काम करने ही पड़ते हैं। अपने परिजनों, प्रियजनों की सुख-सुविधा और उनकी सुरक्षा की खातिर कभी-कभी ऐसे काम करने को विवश होना ही पड़ता है। कभी-कभी तो मनुष्य स्वयं अपने सुख और भोग-विलास की पूर्तता के लिए दु:ख उठाने को तैयार हो जाता है, या किसी को दुखी करके भी वह स्वयं को सुखी करना चाहता है। तब ऐसी स्थिति में श्री भगवतीचरण वर्मा की परिभाषा बेमानी और अर्थहीन हो जाती है। इस तरह तो निष्कर्षत: यह कह सकते हैं कि संसार में पाप होता है और पाप की परिभाषा भी अवश्य की जा सकती है।

मन-मस्तिष्क में उत्पन्न होनेवाले संशयों के निराकरण के लिए आइए हम एक और दृष्टान्त देखें शायद किसी निष्कर्ष पर पहुँच सकें। अब हम दृष्टान्त ले रहें हैं श्रीमद भगवद्गीता से। इस महाग्रन्थ की प्रशंसा में, तारीफ में जितना भी कहा जाए कम है। श्रीमद् भगवद्गीता पर बड़े-बड़े संतों-महन्तों और ऋषि मुनियों ने बहुत कुछ कहा है। यह ग्रन्थ हिन्दु धर्म का पवित्र

धर्मग्रन्थ माना जाता है । लेकिन मेरा मंतव्य है कि यह मानव धर्म का वैश्विक ग्रन्थ है । इसे हिन्दु धर्म का धर्म ग्रन्थ मानना इसकी महत्ता को, इसकी विराटता को कम करना है । मैं इसके सम्मुख नत मस्तक होते हुए अपनी बात आगे बढ़ाता हूँ । इस ग्रन्थ में अर्जुन को उपदेश देते हुए भगवान श्री कृष्ण कहते हैं–"कर्मण्ये वा धिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" । इस वाक्य को बड़े-बड़े उपदेशकों ने महान मनीषियों ने तरह-तरह से बड़ी विद्वतता से परिभाषित किया है। इसका मूल अर्थ है – 'फल की इच्छा के बिना कर्म करना ।' इस गूढार्थ उपदेश को समझने के पश्चात सारे संशय खत्म हो जाते हैं ।

बड़ा अटपटा-सा उपदेश है मनुष्य के लिए 'कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' फल की इच्छा के बिना कर्म करो । यह कैसे सम्भव है । फल प्राप्ति की आशा ही न हो, कोई उम्मीद ही न हो तो कोई कर्म कैसे करेगा । मनुष्य को यदि ये पता ही नहीं हो कि किस कर्म के करने से कौन सा फल प्राप्त होगा तो वह कर्म ही क्यों करेगा । किसान बीज बोता है पौधा रूपी फल की आशा में । किसान खेत जोतकर परिश्रम करता है फसल रूपी फल की अपेक्षा में । व्यक्ति नौकरी करता है तनखाह रूपी आमदनी के लिए जिससे वह अपने परिवार का पालन-पोषण कर सके और अपने पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह कर सके । इसी आमदनी के जरिए वह सुख प्राप्त कर सके । फल की इच्छा के बिना मनुष्य कर्म के प्रति प्रेरित कैसे होगा ? क्यों करे वो कर्म ?

'कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' इसमें मूल रूप से दो गूढार्थ छिपे हुए हैं । पहला यह कि जैसा कर्म करेगा वैसा फल मिलेगा और यह संदेश इसी ग्रन्थ में कहा गया है कि मनुष्य जैसा कर्म करेगा वैसा फल पाएगा । क्योंकि प्रकृति अपने जड़ नियमों से बाधित है । परिवर्तनशील विश्व में एक मात्र प्रकृति ही अपरिवर्तनशील है । आप काँच पर पत्थर मारो और यह अपेक्षा रखो की काँच न टूटे, न फूटे यह सम्भव नहीं है । किसी वृक्ष पर कुल्हाडी चलाओ और यह आशा रखो की वह न कटे यह कैसे हो सकता है । क्रिया पर प्रतिक्रिया यह प्रकृति का जड़ नियम है और इसमें लेशमात्र परिवर्तन सम्भव नहीं है । तो इसी संदेश के सहारे हम कह सकते हैं कि कर्म के किये जाने पर फल का प्राप्त होना शत प्रतिशत तय है । तो फिर श्रीकृष्ण ने यह क्यों कहा "कर्मण्ये

वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"। क्योंकि कई बार ऐसा होता है कि कर्म करने के बाद भी फल प्राप्त नहीं होता है। लेकिन यह सत्य नहीं है। कर्म किये जाने पर फल तो मिलता ही है, लेकिन फल हमारी अपेक्षा के अनुकूल नहीं होता, हमारा मनोवांछित फल नहीं होता इसलिए हमें लगता है कि फल की प्राप्ति नहीं हुई। हम इस ओर ध्यान नहीं देते हैं कि मनोवांछित फल प्राप्त न होने के पीछे हमारे कर्म में ही कोई कमी रह गई होगी। मन की अशांति और उद्विग्नता के कारण हम अपने कर्म के प्रति सतर्क, सचेत और सजग नहीं रह पाते हैं और इसके परिणाम स्वरूप हमें मनोवांछित फल की प्राप्ति नहीं हो पाती है और इस स्थिति में मनुष्य नैराश्यता के गहरे गर्त में डुब जाता है। इसी निराश, उदास और हताशा के चलते मनुष्य कर्म से विमुख हो जाता है, विक्षिप्त हो जाता है। मनुष्य को इसी हताशा से, कर्म के प्रति विमुखता से और विक्षिप्तावस्था से बचाने के लिए ही श्री कृष्ण ने कहा है 'कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'।

इसका दूसरा गूढार्थ है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य यदि अपने कर्तव्य का पालन करे तो संसार की सारी परेशानी, सारे दुःख, सारे विकार, सारी दुविधाएँ- शंकाएँ खत्म हो जाएँ। प्रत्येक मनुष्य शिकायत करता नज़ार आता है। सारी शिकायतें, सारे अपराध, खत्म हो जाएँ यदि संसार का प्रत्येक मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन करे। प्रत्येक माता-पिता किसी भी तरह की अपेक्षा और अधिकार की भावना न रखते हुए सिर्फ अपने कर्तव्य का पालन करें। अपने संतान का पालन-पोषण करना,उन्हें अच्छे संस्कार देना, अच्छी शिक्षा-दीक्षा, उनके विवाह आदि कार्य सम्पन्न करना। वे अपना कर्तव्य करें। इसके बाद संतान का दायित्व है कि वे अपना कर्तव्य निर्वाह करते हुए अपने माता-पिता का ध्यान रखे, उनकी सेवा सुश्रुषा करे। समाज के प्रति जो कर्तव्य हैं उसको निभाएँ। नौकरी पेशा व्यक्ति अपना कर्तव्य निभाए। अधिकारी अपने कर्तव्यों का पालन करे। सत्ताधीश, शासनकर्ता अपने कर्तव्य का पालन करे, अपना दायित्व निभाए तो सब कुछ सरल हो जाएगा। प्रत्येक मनुष्य को बिना मांगे अपने अधिकार प्राप्त हो जाएँगे। सारी शिकायतें खत्म हो जाएँगी। अधिकार प्राप्त होते ही मनुष्य संतुष्ट हो जाता है और वह व्यक्ति जो संतुष्ट हो गया हो उसके मन-मस्तिष्क में शांति छा जाति है, वह स्नेह और प्रेम से परिपूर्ण हो जाता है।

अब आप कल्पना कीजिए कि संसार का प्रत्येक मनुष्य, प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्य का पूर्ण निष्ठा से पालन करता है, और इसके चलते सभी को बिना मांगे अपने अधिकार प्राप्त हो जाते हैं, जिससे प्रत्येक के मन मस्तिष्क में शांति, स्नेह और प्रेम है। कल्पना मात्र से लगता है संसार बदल गया। चारों और खुशहाली ही खुशहाली है। प्रेम और स्नेह की बरसात हो रही है। यही सबसे बड़ा सुख है।

इसलिए अन्तत: निष्कर्ष रूप में हम यह दावे से कह सकते हैं कि इस पृथ्वीलोक में सबसे बड़ा मानव धर्म, वैश्विक धर्म यदि कोई है तो वह है अपने कर्तव्य का पालन करना।

• • •

चलो भगवान बनें

भगवान अर्थात् क्या ? इस एक वाक्य को आज तक कोई भी पूरी तरह से शायद नहीं समझा पाया है, और न हम ठीक से समझ पाए हैं। भगवान के कई अर्थ, सैंकडों अर्थ या यूँ कहूँ की अनेकों अर्थ निकाले गये हैं, तो कुछ गलत नहीं है, और न ही कोई अतिशयोक्ति है। इसके बावजूद भगवान का अर्थ अभी भी आधा-अधूरा सा लगता है। अभी भी भगवान के अर्थ से मन को संतुष्टी नहीं हो पाई है। ऐसा लगता है कि अभी भी कुछ है जो छूट गया है। ऐसा लगने के कई कारण हो सकते हैं।

हमारी भारतीय संस्कृति समन्वयकारी संस्कृति है। अपनापन, अपनत्व, दया, ममता, सहानुभूति, प्रेम, विश्वबंधुत्व, वसुधैवकुटुम्बकम् ये इस संस्कृति की विशेषताएँ हैं। इस संस्कृति की तमाम अच्छाइयों में एक सबसे बड़ी अच्छाई, सबसे बड़ी विशेषता है, आदर देने की। मान - सन्मान देने की। हमारी भारतीय संस्कृति में आत्मा को परमात्मा का अंश माना गया है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य, मनुष्य होकर भी, सम्बन्धों की मर्यादा में भी देव तुल्य है। इसीलिए कहा जाता है आचार्य देवो भव, मातृ देवो भव, अतिथि देवो भव। हम अगर किसी में भी सद्गुण की कुछ विशेषता देख लें तो उसके प्रति हमारे मन में मान-सम्मान का विशेष भाव जागृत हो जाता है। वही व्यक्ति जब समाज कल्याण के लिए वचन बद्ध दिखाई देता है, अपना पूरा जीवन मानव कल्याण के लिए, मानव विकास, उसके उत्थान के लिए समर्पित करता नज़र आता है तो उसके प्रति हमारे मन में स्नेह का सागर उमड़ पड़ता है। हम उस पर अपनी सारी निधि न्यौछावर कर देना चाहते हैं। उसे देव तुल्य मानते हैं। उसे भगवान के समकक्ष मानते हैं। यह सब उसके प्रति हमारा आदर व्यक्त करने का तरीका है। हम उसे अपने मन के सिंहासन पर भगवान की तरह प्रतिष्ठित करके, उसकी पूजा-आराधना करने लगते हैं। उसकी अच्छाईयों का गुणगान करने लगते हैं, और साथ ही यह भी चाहते हैं कि और सभी लोग भी उन्हें उसी स्वरूप में देखें जैसे हम देखते हैं। सभी, इनकी उसी तरह पूजा - आराधना करें जैसे हम करते हैं। सभी इनको भगवान माने जैसे हम मानते हैं।

हम अपने मनोनीत ईश्वर की सत्यता को, उसकी अच्छाईयों को प्रतिष्ठित करने के लिए उसकी प्रतिष्ठा में साहित्य सृजन करते हैं, और करवाते हैं। इस साहित्य में हम अपने ईश्वर की अच्छाईयों को और बढ़ा चढ़ाकर, अतिशयोक्ति से भरकर प्रस्तुत करते हैं। उस व्यक्ति विशेष की अच्छाईयों से प्रभावित होकर उसे ईश्वर स्वीकार करनेवालों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जाती है। धीरे-धीरे एक बड़ा समूह बन जाता है। यह स्थिति दिनोदिन बढ़ते-बढ़ते काल के पार तक चली जाती है। सदियाँ बीत जाती हैं। युग परिवर्तन हो जाता है। और एक युग के बाद नये युग में वह व्यक्ति यकीनन भगवान बन जाता है। उसकी प्रशंसा में, प्रतिष्ठा में लिखा गया साहित्य इस बात का प्रमाण बन जाता है कि वह भगवान था। उससे जुड़े उस समय के शिलाखण्ड, खण्डहर, भग्नावशेष इस प्रमाण की पुष्टि करते हैं कि वह था।

मैं समझता हूँ कि ऐसा होना कोई बुरी बात नहीं है। इससे समाज में अच्छाईयाँ उभर कर समाने आएँगी। उसे ईश्वर माननेवालों के इतने बड़े समूह में, इतने बड़े समाज में अपने ईश्वर की अच्छाईयाँ उतरेंगी। उस समूह के, उस समाज के प्रत्येक व्यक्ति में दया, ममता, प्रेम, सहानुभूति, अपनत्व, विश्वबंधुत्व, वसुधैवकुटुम्बकम्, समता की भावना का फैलाव होगा और ऐसा होना विश्व के लिए सर्वश्रेष्ठ है, उत्तम है। यही तो हम चाहते हैं, तभी तो विश्व में शांति स्थापित हो सकेगी। इससे बेहतर और क्या हो सकता है ? मेरे विचार से भगवान शायद ऐसे ही बनते हैं, या बनाये जाते हैं।

उदाहरण के तौर पर भगवान श्रीराम का उदाहरण लिया जा सकता है। इनके लिए यह बार-बार कहा गया है कि वे मर्यादा पुरुषोत्तम थे। वे मनुष्य रूप में लीला कर रहे थे। इस तथ्य को ध्यान में रखकर स्थितप्रज्ञ होकर यदि सारी घटना का सिंहावलोकन करें। यदि आदि से अन्त तक पुनर्मुल्यांकन करें तो लगता है कि –

एक चक्रवर्ती सम्राट के यहाँ बड़े तेजस्वी और यशस्वी चार राजकुमारों का जन्म हुआ। ये चारों राजकुमार विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। इन चारों राजकुमारों ने जीवन भर अपनी विलक्षणता और तेजस्वीता के बल पर समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन किये, लोगों को आश्चर्यचकित किया। समाज में निहित कई बुराईयों को आमूल बदल दिया। इन चारों राजकुमारों के

समाज कल्याण के ऐसे अद्वितीय, अवर्णनीय और अकल्पनीय कार्यों से प्रभावित होकर उस समय के श्रेष्ठ, सज्जन मनीषियों ने उनकी स्तुति की, उन्हें अपने आराध्य के रूप में, अपने इष्ट देव के रूप में स्वीकार किया। उनकी प्रशंसा में, उनकी प्रतिष्ठा में श्रेष्ठ उपमानों, अलंकारों से सजाकर कई साहित्य की रचना होने लगी। राम के ऐसे ही अतुलनीय कार्यों से प्रभावित होकर जनसमुदाय उनके गुणगान करने लगा। राजा और राजकुमारों की प्रशंसा करना तो वैसे भी एक सामान्य-सी बात है। यह तो होता ही रहा है और इतिहास इसका साक्षी है। लगभग सभी राजा-राजकुमारों की प्रशंसा में कुछ न कुछ साहित्य समकालीन समय में प्राप्त हो ही जाता है। इस पर राम जैसा आकर्षक व्यक्तित्व और उससे भी बढ़कर समाज कल्याण के लिए किये गये उनके अद्वितीय कार्य। लोगों ने उनके नाम से मंदिर बनाना शुरु कर दिये। उनके द्वारा लोगों के प्रति किये गये कार्यों को और लोगों पर उनके स्नेह और दया ममता को लक्ष्य बनाकर स्तुति करने लगे।

तेजस्वी, यशस्वी और चक्रवर्ती राजकुमार के लिए लोगों के द्वारा यह सब किया जाना बड़ा ही स्वाभाविक है। उन्हें ईश्वर माननेवालों की संख्या दिनोदिन बढ़ती जाती है। उनके मंदिरों की संख्या बढ़ती जाती है। उनकी प्रशंसा और प्रतिष्ठा में लिखा जानेवाला साहित्य विपुल होता चला जाता है। इसी प्रकार समय व्यतित होता जाता है। सदियाँ बीत जाती है। प्रलय हो जाती है। युग परिवर्तन हो जाता है और कई सदियों के बाद लोगों को वह प्राचीन साहित्य प्राप्त होता है। उन मंदिरों के भग्नावशेष प्राप्त होते हैं। उस समय की घटनाओं को प्रमाणित करनेवाले खण्डहर और शिलालेख प्राप्त होते हैं। इन सब चीजों के प्राप्त होते ही वे भगवान के पद पर, ईश्वर के स्थान पर स्थापित हो जाते हैं, प्रतिष्ठित हो जाते हैं। सदियों के बाद अब वे पूर्ण ईश्वर हो गये।

भगवान शायद ऐसे ही बनते हैं। ईश्वर का, प्रभु का निर्माण शायद ऐसे ही होता होगा। इन सब तथ्यों के सार रूप जो एक ठोस यथार्थ उभर कर सामने आता है, वह मेरे विचार से यह है कि भगवान, ईश्वर, अल्लाह का अर्थ है, सदगुण, अच्छाई, प्रामाणिकता, सहानुभूति, प्रेम, सद्भावना, विश्वशांति आदि। कोई माने ना माने मैं तो यही मानता हूँ। साथ ही छाती ठोंककर, सीना तानकर, एक बात बड़े दावे से कहता हूँ कि विश्व के किसी भी धर्म

में किसी भी सम्प्रदाय में किसी ईश्वर ने, भगवान ने, अल्लाह ने, ईशा ने यह कभी नहीं कहा कि मेरे लिए मन्दिर बनवा, मस्जिद बनवा, चर्च बनवा, गुरुद्धारा बनवा, नहीं तो मैं तेरा घर तोड़ दूँगा। यह कभी नहीं कहा की मेरे आगे छप्पन पकवान के भोग लगा नहीं तो मैं तेरी थाली छीन लूँगा। यह कभी नहीं कहा कि मेरे आगे दिया जला, अगरबत्ती कर, मोमबत्ती जला नहीं तो मैं तुझे जला दूँगा। यह कभी नहीं कहा की मुझे बहुमूल्य, वेशकीमती वस्त्रों और आभूषणों से अलंकृत कर नहीं तो मैं तुझे निर्वस्त्र कर दूँगा। कभी नहीं कहा। वे तो सिर्फ इतना कहते हैं कि आपस में मिलजुल कर रहो। अपने हृदय में दया, ममता, प्रेम, सहानुभूति के सद्‌गुणों को बनाए रखो और इस पर अमल करो। विश्व शांति स्थापित करो। इस विश्व को 'वसुधैवकुटुम्बकम्' बनाओ। बस यही तो है ईश्वरत्व का सार, यही तो चाहते हैं अल्लाह और ईशु। विश्व के तमाम धर्मों की आधार भूमि मानवता ही है।

प्रेम और सद्‌भावना ही ईश्वर है, देव है। घृणा, दुर्भावना, आतंक और हिंसा ही दानव है, राक्षस है। और ये दोनों ही प्रत्येक मनुष्य में समाहित हैं। हम अपने भीतर इन दोनों (देव और दानव) को लिए हुए हैं। अब हम इनमें से किसको कितना पहचान पाते हैं किसको कितना महत्त्व देते हैं, किसको कितना अपनाकर आत्मसात कर पाते हैं, यह सब हम पर निर्भर है। वे लोग जो ईश्वर, अल्लाह, ईशु को मानते हैं, उनसे तो अपेक्षा है ही कि वे विश्व में प्रेम और बन्धुत्व की भावना का प्रचार करेंगे। वे लोग ही विश्व शांति बनाएँगे। साथ ही वे लोग जो ईश्वर, अल्लाह, ईशु को नहीं मानते हैं। जो उनके अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते हैं। वे लोग इस तथ्य से इन्कार नहीं कर सकते हैं कि नीम के पेड़ में आम नहीं लग सकता है। वे यह भलिभाँति समझ लें कि आप जैसा करेंगे, आप जैसा देंगे वैसा ही पाएँगे। इसलिए आप यदि चाहते हैं कि आपकी प्रशंसा हो तो आप को भी उसकी अच्छाईयों की प्रशंसा करनी होगी। यह नहीं हो सकता है कि आप किसी को गाली दें और वो आपकी प्रशंसा करे। यह भी नहीं हो सकता है आप किसी को पत्थर मारें और वो आपको फूल-माला पहनाएँ। इसलिए आप अपने साथ जैसा व्यवहार चाहते हैं, वैसा ही व्यवहार आप दूसरों के साथ करें।

• • •

साहित्य में निरुपित प्रकृति चित्रण

एक सर्वसामान्य मान्यता यह है कि साहित्य समाज का दर्पण है, या साहित्य में समाज का प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है। लेकिन यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि साहित्य में समाज के साथ-साथ पूरी प्रकृति प्रतिबिम्बित होती है। प्रकृति के द्वारा मनुष्य को जीवन प्राप्त हुआ है। प्रकृति के द्वारा जीवन के सारे सुख और ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। प्रकृति ने मानव जीवन पर अनेकों एहसान किये हैं। यह कहना बिलकुल सटीक है कि प्रकृति है तो मानव जीवन है। मनुष्य जीवन के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक मनुष्य प्रकृति से अलग हो ही नहीं सकता है। प्रकृति तो पल-पल जुड़ी है जीवन के साथ। अलग-अलग स्वरूप में प्रकृति जीवन भर मनुष्य के जीवन को सुखमय बनाने में अपना सर्वस्व त्याग देती है।

प्रकृति के मध्य जन्म लेकर पल्लवित, पुष्पित होना, अपनी तमाम कलाओं को पूर्णत: विकसित करना उनका आनन्द प्राप्त करना, सफलता के शीखर तक जाना, प्रकृति के तमाम सुखों को भोगना और अन्तत: इसी प्रकृति में समाहित हो जाना यही मानव जीवन है और यही जीवन का परम आनन्द भी है। मनुष्य जो कुछ भी प्राप्त करता है वह सभी कुछ इस प्रकृति की ही देन है। मानव जीवन पर प्रकृति के इस एहसान को मनुष्य ने साहित्य में अलग-अलग ढंग से निरुपित किया है। साहित्य में इसके भरपूर गुणगान गाए गये हैं। इसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए साहित्य की तमाम विधाओं में पूर्ण श्रद्धा से इसकी वन्दना की गई है। इतना ही नहीं सामान्य जनमानस भी इसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करे इसके लिए हमारे पूर्वजों और ऋषि-मुनियों ने प्रकृति को धर्म से जोड़कर उसकी पूजा-अर्चना प्रारम्भ की। हमारी भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि हम प्रकृति के सभी रूपों को पूजते हैं, उसके गुणगान करते हैं, उसे पूरी श्रद्धा से वन्दन करते हैं। प्रकृति का कोई भी रूप-स्वरूप वन्दना से अछूता नहीं है। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक प्रकृती के सभी रूप वन्दनीय हैं। पर्वत, मैदान, जंगल, नदी-नाले, समुद्र और इन तमाम स्थानों पर पाए जाने वाले पदार्थ- प्राणी ये सभी मानव जीवन के उत्कर्ष और उसके चहुमुखी विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

साहित्य में इतस्ततः प्रकृति चित्रण के सुन्दर चित्र बिखरे पड़े हैं। प्रकृति के प्रतिक और बिम्ब के माध्यम से मानव अपने मन की बात को चोटदार ढंग से, बड़ी सटीकता से कहता रहा है। अपने एहसास और अनुभव को पूरी सिद्दत से अभिव्यक्त करने में प्रकृति ही सबसे बड़ा सहारा है। मानव स्वभाव को उजागर करने के लिए तथा सिद्धान्तों और मर्यादाओं की स्थापना के लिए भी प्रकृति को प्रतीक बनाकर साहित्यकारों ने अभिव्यक्ति की है। एक प्रसिद्ध पंक्ति याद आ रही है –

वृक्ष न कबहुँ फल भखे, नदी न संच्चै नीर।

उपर्युक्त पंक्ति में प्रकृति का सहारा लेकर कम शब्दों में कितनी गहरी, सटीक और बड़ी बात कह दी है। मनुष्य के पास जो कुछ भी है, वह देने के लिए ही है, संग्रहित करने के लिए नहीं है। क्योंकि उसे जो कुछ भी प्राप्त हुआ है वह इस प्रकृति से ही प्राप्त हुआ है, उसने स्वयं किसी वस्तु को जन्म नहीं दिया है उसने तो प्रकृति के पदार्थों का मात्र रूपान्तरण किया है। पेड़ काटकर लकडी से टेबल, कूर्सी, दरवाजे, खिड़की, अलमारी और तरह-तरह की चीजें बनाकर यह समझना की मैंने ये चीजें बनाई हैं, मैं इनका जन्मदाता हूँ तो यह गलत है, क्योंकि मनुष्य ने तो सिर्फ लकड़ी का रूप परिवर्तित किया है। इसी प्रकार जीवन की सुख-सुविधा की तमाम भौतिक वस्तुएँ उसने पदार्थ का रूप परिवर्तित करके प्रकृति से ही प्राप्त की है।

साहित्य में प्रकृति का सबसे मनोहारी चित्रण यदि कहीं हुआ है तो वह काव्य है। काव्य में प्रकृति के बड़े ही दिलकश और मनमोहक चित्रण तो हैं ही साथ ही प्रकृति की सबसे अधिक सराहना भी काव्य में ही हुई है। प्रकृति को जितना स्थान काव्य में मिला है उतना विस्तृत और विशाल विस्तार अन्य किसी विधा में नहीं मिल पाया है। प्रकृति की सुन्दरता, उसकी उपयोगिता और उसकी नितान्त आवश्यकता की जितनी सम्प्रेषणता से काव्य में अभिव्यक्ति हुई है उतनी अन्यत्र कहीं नहीं है। प्रकृति ही है जो मनुष्य के भीतर की प्रकृति को उजागर करने में पूर्णतः समर्थ, समृद्ध और सार्थक है।

अत्यन्त प्रसिद्ध निम्न शेर देखिए जिसमें प्रकृति को प्रतीक बनाकर कम शब्दों में कितनी चोटदार बात कह दी गई है –

ये कैसा करिश्मा है हेराँ है नज़र देखो।
बरसात के मौसम में जलता है शहर देखो॥

इस दौर के मंजर तो हद दर्जा निराले हैं,
पीती है नदी पानी फल खाए शजर देखो ॥

समय के साथ - साथ कलयुग का प्रभाव चारों तरफ दृष्टिगोचर हो रहा है। ऐसे में मनुष्य का स्वभाव और चरित्र में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। समाज को जिससे अपेक्षा है वही समाज की उपेक्षा कर रहा है। समाज जिसे रक्षक का दायित्व सौंपता है वही भक्षक बनता नज़र आता है। तमाम प्रकार के संसाधन होने के बावजूद, तमाम साधन मुहैया होने के बावजूद उन्नति और प्रगति के स्थान पर पतन और अधोगति होती चली जा रही है।

कविवर मैथिलीशरण गुप्त की कलम से निरूपित यह प्रकृति चित्रण देखिए –

चारु चन्द्र की चंचल किरणे खेल रही हैं जल-थल में।
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है अवनि और अम्बर-तल में।
पुलक प्रकट करती है धरती हरित तृणो की नोकों से।
मानों झूम रहे हैं तरु भी मंद पवन के झोकों से।
क्या ही स्वच्छ चाँदनी है यह है क्या ही निस्तब्ध निशा।
है स्वच्छंद सुमंद गंध वह निरानंद है कौन दिशा।
बंद नहीं अब भी चलते हैं नियति-नटि के कार्य-कलाप।
पर कितने एकांत भाव से कितने शांत और चुपचाप।
है बिखरे देती वसुंधरा मोती, सबके सोने पर।
रवि बटोर लेता है उनको सदा सबेरा होने पर।

उपर्युक्त पंक्तियों को पढ़कर हृदय आनन्द से पुलकित हो जाता है। प्रकृति को अपनी सुन्दरता में देखने से तो अपार आनन्द प्राप्त होता ही है, लेकिन साहित्य में उसके वर्णन को पढ़कर भी मन तन्मय हो जाता है।

प्रकृति चित्रण का ऐसा ही एक और अद्वितीय गीत देखिए। इसमें सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने पावस की पल-पल परिवर्तित प्रकृति का रागात्मक एवं लयात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है –

अलि, घिर आए घन पावस के।
द्रुम समीर-कम्पित थर-थर-थर, झरतीं धाराएँ झर-झर-झर।
जगती के प्राणों में स्मर – शर, वेध गए, कस के,

अलि, घिर आए घन पावस के।

हरियाली ने, अलि हर ली श्री अखिल विश्व के नवयौवन की,
मन्द गंध कुसुमों में लिख दी लिपि जय की हँस के,
अलि, घिर आए घन पावस के।

लख ये काले - काले बादल, नील सिन्धु में खुले कमल-दल,
हरित ज्योति, चपला अति चंचल, सौरभ के रस के,
अलि, घिर आए घन पावस के।

छोड़ गए गृह जब से प्रियतम, बीते अपलक दृश्य मनोरम,
क्या मैं हूँ ऐसी ही अक्षम क्यों न रहे बस के,
अलि, घिर आए घन पावस के।

हिन्दी साहित्य के ऐसे ही एक सुप्रसिद्ध कवि श्री जयशंकर प्रसाद के नाटक 'चन्द्रगुप्त' में भारत का बड़ा ही रमणीय और मनमोहक चित्र प्रकृति के माध्यम से प्रस्तुत किया है। भारत जैसे विशाल और विविध भूपृष्ठों वाले देश की अत्यन्त वैविध्यपूर्ण मनोहारी प्राकृतिक सुन्दरता को शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत करना कोई आसान काम नहीं है। इसके बावजूद श्री जयशंकर प्रसाद जी ने जिस कुशलता से सीधे सादे, सरल शब्दों में इसे प्रस्तुत किया है, वह यकीनन प्रशंसनीय है। इस गीत को पढ़ने के बाद हर कोई भारत की प्राकृतिक सुन्दरता को देखने के लिए लालायीत हो उठे यह स्वाभाविक है। आप भी इस गीत का आनन्द लीजिए –

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा॥
सरस तामरस गर्म विभा पर,
नाच रही तरु शिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर,
मंगल कुंकुम सारा॥

लघु सुरधनु-से पंख पसारे,
शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुँह किए,
समझ नीड़ निज प्यारा॥

बरसाती आँखों के बादल,
बनते जहाँ भरे करुणा जल।
लहरें टकराती अनन्त की,
पाकर जहाँ किनारा ।।

हेम-कुंभ ले उषा सवरे,
भरती ढुलकाती सुख मेरे।
मदिर ऊँधते रहते जब,
जगकर रजनी भर तारा ।।

विश्व की लगभग सभी प्रसिद्ध विधाओं में पर्याप्त मात्रा में हिन्दी साहित्य उपलब्ध है। भारत की विविध विधाओं में विपुल मात्रा में हिन्दी साहित्य उपलब्ध है, और तमाम विधाओं में प्रकृति चित्रण इतने प्रमाण में है कि कई लोग इस पर शोध निबंध तैयार कर सकते हैं। मनुष्य के तमाम प्रकार के मनोभावों और कार्यकलापों को सटीकता और सम्प्रेषणता से अभिव्यक्त करने में प्रकृति चित्रण सबसे सशक्त माध्यम है।

सुमित्रानन्दन पन्त हिन्दी साहित्य के ऐसे कवि हैं जो प्रकृति के सुकुमार कवि के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रकृति के विभिन्न सुन्दर और मनोहारी चित्रों को पन्तजी ने अपनी काव्य यात्रा में प्रमुख स्थान दिया है। प्रकृति का कोई भी दृश्य ऐसा नहीं है जो पन्त जी से अछूता रहा हो। सीधे-सादे, सरल शब्दों में आम बोलचाल की भाषा में प्रकृति के दिलकश नजारों को उकेरने में पंत जी निपुण हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि पंत जी प्रकृति के कुशल शब्द शिल्पी हैं। इसीलिए तो उन्हें प्रकृति का सुकुमार कवि कहा गया है। उनकी एक अनूठी अद्वितीय और बेहद रोचक और मनमोहक रचना आपके लिए प्रस्तुत है –

झम-झम-झम-झम मेघ बरसते रे सावन के,
छम-छम-छम गिरती बूंदे तरुओं से छन के।
चम-चम बिजली चमक रही छिप उर में घन के,
थम-थम दिन के तम में सपने जगते मन के।

ऐसे पागल बादल बरसे नहीं धरा पर,
जल फुहार बौछारें धारें गिरती झर-झर।

आँधी हर हर करती, दल मर्मर, तरु चर चर,
दिन रजनी औ' पांख बिना तारे शशि दिनकर।
पंखो-से रे, फैले-फैले ताड़ों के दल,
लंबी-लंबी अंगुलियाँ हैं, चौड़े, करतल।
तड़-तड़ पड़ति वारि धार गिर उन पर चंचल,
टप-टप झरती कर मुख के जल बूँदे झलमल।
नाच रहे पागल हो ताली दे दे चल दल,
झूम झूम सिर नीम हिलाती सुख से विह्वल।
हर सिंगार झरते, बेला कलि बढ़ती पल पल,
हँसमुख हरियाली में खग कुल गाते मंगल।
दादुर टर-टर करते, झिल्ली बजती झन-झन,
म्याउँ-म्याउँ रे मोर, पीउ-पीउ चातक के गण।
उड़ते सोन बलाक आद्र सुख से कर क्रन्दन,
उमड़-घुमड़ घिर मेघ गगन में भरते गर्जन।
वर्षा के प्रिय स्वर उर में बुनते सम्मोहन,
प्रणयातुर शत कीट विहग करते सुख गायन।
मेघों का कोमल तन श्यामल तरुओं से छन,
मन में भू की अलस लालसा भरता गोपन।
रिमझिम-रिमझिम क्या कहते बूँदों के स्वर,
रोम सिहर उठते, छूते वे भीतर अंतर।
धाराओं पर धाराएँ झरती धरती पर,
रज के कण-कण में तृण-तृण की पुलकावलि भर।
पकड़ वारि की धार झूलता है मेरा मन,
आओ रे सब मुझे घेर के गाओ सावन।
इन्द्रधनुष के झूले में झूले मिल सब जन,
फिर-फिर आए जीवन में सावन मनभावन।

• • •

विराट व्यक्तित्व के ग़ज़लगो : फिराक गोरखपुरी

यूँ तो फिराक गोरखपुरी पर अब तक बहुत कुछ कहा गया है, लिखा गया है। इन पर इतना अधिक काम हुआ है कि उसे एक दिन में मुकम्मल तौर पर बयान नहीं किया जा सकता।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जनाब फिराक साहब अपने समय के बड़े ही दबंग और प्रसिद्ध शायर थे। उर्दू के चन्द चुनिंदा शायरों में आपका शुमार था। किसी भी एक दौर के शायर की तुलना किसी दूसरे दौर के शायर से करना मुझे बेजा मालूम पड़ता है। मीर तकी 'मीर' 18 वीं सदी के शायर थे उनकी अपने दौर की समझ, परेशानियाँ। उस दौर की सामाजिक व्यवस्थाएँ रही होंगी। गालिब 19 वीं सदी के शायर थे, उनके समय का माहौल यकीनन मीर साहब के समय से अलग रहा होगा और जनाब फिराक साहब 20 वीं सदी के शायर हैं। इस समय तो बहुत बड़े पैमाने पर आमूल परिवर्तन हुए। अंग्रेजों का देश पर शासन और उस समय की देश की स्थितियाँ, सामाजिक रूढ़ीगत समस्याएँ इन्कलाबी आन्दोलन, फिर देश की आज़ादी और आज़ादी मिलते ही फिर नई समस्याओं का सामना। ये सब बीसवीं सदी की देन थी। इसलिए इन तीनों महान शायरों का समयकाल अलग-अलग होने से इनके बीच तुलना करना ठीक नहीं है।

यूँ तो फिराक साहब ने रूबाइयाँ और नज्में भी ख़ूब कही हैं, लेकिन उनकी विशेष पहचान एक ग़ज़लगों के रूप में है। ग़ज़लों ने उन्हें जितनी प्रसिद्धि दिलाई है उतनी प्रसिद्धि उन्हें अपनी अन्य रचनाओं से नहीं मिल पाई है।

फिराक तो नर्म ओ नाजुक शेर कहने और शायरे जमाल कहलाने वाले शायर हैं। साथ ही यह भी सच है कि फिराक साहब मुँहफट होने की हद तक स्पष्टवादी और कलमफट होने की हद तक साहित्यिक योद्धा हैं। अंग्रेजी, फारसी, संस्कृत, हिन्दी, उर्दु आदि भाषाओं के गहरे अध्ययन के आधार पर

फिराक साहब को जब भी किसी 'साहित्यिक अनार्जन' का अनुभव होता तो तुरन्त उनकी जबान या कलम गतिशील हो उठती। पाकिस्तान में जब इस्लामी और रुहानी साहित्य का नारा बुलंद हुआ तो लाहोर से प्रकाशित होनेवाली मासिक पत्रिका 'नुकूश' के सम्पादक को उन्होंने एक पत्र में लिखा कि "... रही बात भौतिकता या आध्यात्मिकता की। निन्नानवे प्रतिशत साहित्यिक और असाहित्यिक कामों में यह झगड़ा उठता ही नहीं। जब जंगल में आग लगती है तो वे समस्त जन्तु, जो एक- दूसरे को खा जाते हैं, चुपचाप एक स्थान पर खड़े हो जाते हैं। आज इसकी बिलकुल आवश्यकता नहीं है, कि जो साहित्यकार भौतिकवाद के समर्थक हैं उनका एक धड़ा हो, जो अध्यात्मवाद के पक्षपाती हैं उनका दूसरा। भूख, बेकारी, बेरोजगारी, चोरबाजारी, रिश्वत, जीवन के हर विभाग की अव्यवस्था साम्राजी शक्तियों के षडयंत्र और विनाशात्मक प्रयत्न हजार में से नौ सौ निन्नानवे व्यक्तियों की दरिद्रता पाकिस्तान, हिन्दुस्तान, एशिया, अफ्रीका और यूरोप के कई देशों का जीवन नरक बनाए हुए है। फिर तीसरे महायुद्ध का खतरा मुसलमानों के ही नहीं, संसारभर के जीवन और मृत्यु का प्रश्न बन गया है। इस समय नमक हलाल साहित्यकार के सम्मुख इस्लामी और गैर-इस्लामी, 'आस्तिक' और 'नास्तिक' साहित्य के प्रश्न नहीं हैं, बल्कि एक ही प्रकार की मुसीबत में गिरफ्तार मुस्लिम और गैर-मुस्लिम दुनिया को एक ही उद्देश्य के साहित्य की आवश्यकता है। अर्थात् इन विश्वव्यापी समस्याओं का विवेक पैदा करना सामुहिक संघर्ष और संगठित आन्दोलनों के महत्त्व का बोध पैदा करना और अपने देश, एशिया, अफ्रीका और यूरोप के जन-आन्दोलनों का साथ देने की तत्परता पैदा करना और इन क्रियात्मक प्रस्तावों को उत्तम साहित्यिक रचनाओं द्वारा आगे बढ़ाना। वर्तमान का बोध और वर्तमान में जिस उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएँ संसार भर के लिए निहित हैं, उन संभावनाओं का बोध। यही वह साम्यवादी सत्यता Socialist Realism है जिसके सहारे साहित्य-रचना होगी। यह सत्यता न इस्लामी है, न ईसाई है, न हिन्दू है, बल्कि साम्यवादी सत्यता है....।"

इस पत्र में हमें फिराक साहब की स्पष्टवादी नीति के साथ - साथ एक और बात साफ नज़र आती है और वो है उनका साम्यवादी नज़रिया।

फिराक साहब साम्यवाद के हिमायती थे लेकिन अपने स्वभाव के अनुकूल उन्हें जब भी जहाँ कहीं भी किसी की हरकत अनुचित नज़र आती तो वे उसका खुलकर स्पष्ट रूप से विरोध करते। जब फिराक साहब ने महसूस किया की साम्यवाद में विश्वास रखनेवाले प्रगतिशील साहित्यकार संकीर्णता के शिकार हो गये हैं और प्राचीन साहित्य की ओर विशेष ध्यान नहीं देते तो उन्होंने इस प्रवृत्ति की बड़े कडे शब्दों में निंदा की। उन्होंने कहा – "याद रहे कि साहित्य और संस्कृतियों के बावजूद अगर अपने सिलसिलों और स्रोतों से विमुख हो गये तो सख्त घाटे में रहेंगे। संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद से लेकर टैनिसन, स्विनबर्न, टाल्सटाय, टैगोर, गालिब और इक़बाल तक के साहित्य में दूसरों को प्रभावित करने के जो ढंग और कलात्मक चमत्कार हमें मिलते हैं, यदि हमने उन्हें प्राप्त नहीं किया तो केवल प्रगतिशील उद्देश्य हमसे महान साहित्य की रचना नहीं करवा सकते.... हमें प्राचीन साहित्य की आत्मा को अपने अन्दर समोना है। यह प्राचीन साहित्य के अध्ययन मात्र से सम्भव नहीं, बल्कि उसके प्राणों तक पहुँचने की जरूरत है। यदि हम प्राचीन साहित्य के तत्त्वों का भेद न पा सके, तो हमारा साहित्य प्रगतिशील होते हुए भी एक उखड़े पतंग के समान होगा।"

साहित्य के सम्बन्ध में ही नहीं, वे अपने व्यक्तिगत जीवन में भी काफी दबंग रहे। सामाजिक रूप से कोई कितना ही बड़ा व्यक्ति क्यों न हो, वे उसकी किसी मामूली-सी अनुचित बात को भी सहन नहीं करते थे।

एक बार बम्बई की एक महफिल में जिसमें सरदार जाफरी, जाँ निसार 'अख्तर', 'साहिर' लुधियानवी, 'क़ैफी' आजमी इत्यादी कई प्रगतिशील शायर मौजूद थे 'फिराक' साहब ने बड़े गौरव से एक शेर पढ़ा –

मौत इक गीत रात गाती थी,
ज़िन्दगी झूम - झूम जाती थी।

सरदार जाफरी ने यह समझकर कि 'फिराक' साहब ने ज़िन्दगी पर मौत को प्रधानता दी है, ऊँची जबान से ललकारा, "फिराक साहब, गुस्ताखी माफ हो, हमें आप शेर सुनाइए, बकवास मत कीजिए।"

'फिराक' साहब भला इस गुस्ताखी को कैसे माफ कर सकते थे, तुरन्त भड़ककर बोले "मै तो शेर ही सुना रहा हूँ, बकवास तो आप कर रहे हैं।"

और इसके बाद उपस्थित सज्जनों ने 'फिराक' साहब की जबान से ज़ि.न्दगी और मौत की फिलासफी की ऐसी-ऐसी बातें सुनी कि यदि स्वयं ज़िन्दगी और मौत साकार होती तो इन बातों से पनाह मांगने लगती।

'फिराक' साहब ने अनगिनत कविताएँ, ग़ज़लें, रुबाइयाँ, कतए इत्यादि लिखे हैं। समालोचक भी वे उच्चकोटि के हैं लेकिन स्मरण वे सदा अपनी ग़ज़लों बल्कि ग़ज़लों के उन शेरों के कारण किये जाएंगे जिनकी संख्या सैकड़ों तक पहुँचती है और जो निस्सन्देह क्लासिक का दर्जा रखते हैं। और उन्हीं शेरों के कारण, जिनमें उर्दू की प्राचीन इश्किया शायरी के विपरीत इश्क की उद्‌भावना एक जीवित और गतिशील शक्ति के रूप में मिलती है लोग उन्हें आधुनिक उर्दू-साहित्य का सबसे बड़ा ग़ज़ल-गो शायर मानते हैं। और इसमें कोई सन्देह भी नहीं है कि आपके यहाँ शब्दों की जो सुन्दर पैठ, हिन्दी और उर्दू के शब्दों और रूपकों का सुन्दर समन्वय, प्रेम और सौन्दर्य की मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताएँ जिस सजीलेपन से विद्यमान हैं, वे अन्य उर्दू शायरों के यहाँ कुछ कम ही नज़.र आती हैं। भावुकता में चिन्तन का तत्त्व सम्मिलित कर आप न केवल प्रभावशीलता में वृद्धि कर देतें हैं, बल्कि सार्थकता में भी निखार आ जाता है।

'फिराक' साहब की अधिकतर शायरी इश्किया शायरी है। लेकिन इनकी इश्किया शायरी उर्दू की अधिकांश इश्किया शायरी जैसी नहीं है। अपनी इश्किया शायरी द्वारा 'फिराक' ने प्राचीन इश्किया शायरी की प्रेयसी, बेवफा तवाइफ को कोठे से नीचे उतारा है और आशिक को आठों पहर रोने धोने से मुक्ति दिलाई है। आपके कथनानुसार "इश्किया शायरी के लिए सिर्फ आशिक होना और शायर होना काफी नहीं। न सिर्फ नेक और रक़ीक़ुल क़ल्ब होना काफी है। सिर्फ ज़ज़्बाती और सिर्फ माकूल आदमी भी काफी नहीं। दाखिली और खारिजी (आंतिरक और बाह्य) मुशाहदा (अवलोकन) भी काफी नहीं। इन गुणों के अलावा महान इश्किया शायरी के लिए जरूरी है कि शायर की बोध और ज्ञान सम्बन्धित, अन्त: प्रेरणा सम्बन्धी और सदाचार सम्बन्धी विस्तृत जानकारी हो। उसकी शख़्सियत एक वसीअ ज़िन्दगी और वसीअ कल्चर की वाहक हो। उसका दिल भी

बड़ा हो और दिमाग भी बड़ा हो – मतलब ऐसे दिल और दिमाग जिन्हें संस्कृति ने रचाया-सजाया हो ।”

फिराक साहब की ग़ज़लों में ज़िन्दगी के तमाम रंग इतस्तत: बिखरे पडे हैं । बिम्ब और प्रतीकों के माध्यम से शेर कहने में वे अपना सानी नहीं रखते हैं । फिराक साहब ने मिथक का भी उपयोग किया है । मिथक का प्रयोग करके सटीक शेर कहने में वे बड़े ही सिद्ध हस्त थे ।

एक शेर देखें जिसमें उन्होंने मिथक को बिम्ब बनाया है । पत्नि अर्थात् गृहलक्ष्मी जो खुशियों का अक्षय भण्डार है वो यदि ज़िन्दगी से चली जाए तो ज़िन्दगी बेजार हो जाती है, बनवासी हो जाती है । इसी मफहूम को उन्होंने कितने बेहतर ढंग से पेश किया है देखें –

हर लिया है किसी ने सीता को,
ज़िन्दगी क्या है कि राम का वनवास ।

इसी तरह एक और शेर देखें जिसमें गमज़दा व्यक्ति की ज़िन्दगी को जिस तरह पेश किया है, उसके दर्द को जिस तरह नक्स किया है, इससे बेहतर ढंग से इस बिम्ब का प्रयोग और कोई नहीं कर सकता । ‘फिराक’ साहब कहते हैं –

इस दौर में ज़िन्दगी बसर की,
बीमार की रात हो गई ।

इश्किया शायरी के अनुठे ढंग से शेर कहने के बेताज बादशाह ‘फिराक’ साहब का यह लतीफ शेर देखिए –

दिए रहो अभी कुछ और देर हाथ में हाथ,
अभी न पास से जाओ बड़ी उदास है रात ।

ऐसा ही तगज्जुल से भरपूर एक और शेर देखिए –

आसमानों को नींद आई है,
कौन ये ले रहा अंगडाई है ।

‘फिराक’ की इश्किया और जमालियाती नज्मों में हिज्रो विसाल के किस्से की कैफियत के साथ एक और कैफियत है और वो है एहसासे तनहाई ‘फिराक’ साहब का कहना है कि उनकी ज़िन्दगी एहसासे जमाल उसकी दुशमन न होती तो उनकी शायरी में ये रंग इतना न निखरता । ‘फिराक’

उर्दू के पहले शायर हैं जिन्होंने गालिब के अपने ज़माने की बेचैनियों को नज्म किया। 'फिराक' कहते है – "जब मैं ज़िन्दगी में अमल की हैसियत से मुत्तासिर होने लगा तो उसके साथ समाजवाद का फलसफा भी समझ में आने लगा ई. सन्. 1936 के बाद मेरी बहुत सी नज़्मों, ग़ज़लों और रुबाइयों में ये ख़याලात जगह पाने लगे।"

उनकी आरम्भिक रचनाओं में भी अद्धितीय चिंतन, मनन और अध्ययन का वजन, उसकी गहराई और उसका चमत्कार पहले दिन ही से प्रतिध्वनित होने लगा। कच्चापन, छिछलापन और सस्तापन 'फिराक' साहब की शायरी में कभी नहीं आया। उनकी कही हुई आठ-दस हजार से भी अधिक पंक्तियों में मुश्किल से दस-पद्रह पंक्तियाँ हल्की मिलेंगी। 'फिराक' साहब को उनके व्याह ने किस प्रकास डस लिया, बचपन से लेकर बूढ़े होने तक का वर्णन अपने महान काव्य 'हिंडोला' में बड़े सुन्दर, सुगम, स्वाभाविक और मार्मिक ढंग से किया है। 'फिराक' साहब की ये कविता आदिकाल से अब तक के विश्वकाव्य में कुल दस बारह महानतम कविताओं में शुमार है।

पुरी उर्दू शायरी में 'फिराक' की शायरी एक नयी आवाज़ के रूप में गूंजती सुनाई देती है। साथ ही लगभग दो सौ वर्षीय उर्दू शायरी की परम्परा ने वाक्य-सौन्दर्य और वाक्य-कौशल के जो आदर्श और नमूने पेश किये थे, उन्हें कहीं से ठेस नहीं लगी। परम्परा का पूरा-पूरा ध्यान रखते हुए उर्दू शायरी को एक नयी आवाज देना 'फिराक' साहब का सबसे बड़ा कारनामा है। जो गूँज और जो प्रतिध्वनियाँ 'फिराक' की शायरी में हमें मिलती हैं उनमें एक अद्धितीय सुहानापन है, उनका एक सहज स्वभाव है, भारत की धरती की सुगंध है, भारतीय संस्कृति के मातृत्व का स्पर्श है, उनमें अमृत-वाणी का गुण है। ऐसा लगता है कि ग़ज़ल एक देवी के रूप में सोलहों सिंगार के साथ बाल संवारे, केश छिटकाये सामने आकर खड़ी हो जाती है और हमारे आँसुओं को अपने चुम्बन से पोंछ देती है। यह सांत्वना प्रदायिनी विशेषता हमें उर्दू में शायद ही कहीं और मिलती हो। करुण-रस और शांत-रस का ऐसा संगम 'फिराक' से पहले उर्दू कविता में बहुत कम देखा गया था। यह गुण हिन्दू-संस्कृति की देन है। जब 'फिराक' को भारतीय ज्ञानपीठ

की तरफ से सन् 1971 में एक लाख रूपये का इनाम दिया गया था तो उनके बारे में जो विज्ञप्ति प्रकाशित की गई थी उसी विज्ञप्ति में यह बात कई बार दोहराई गई थी। 'फिराक' की कविता में हम किसी अकेले व्यक्ति की आवाज़ नहीं सुनते । भारत के अंतरिक्ष से जो आवाज़ निकल सकती है, उसी की गूंजें सुनते हैं । 'फिराक' की उर्दू भाषा में उर्दू और संस्कृत भाषा का फर्क मिटकर एक हो जाता है । 'फिराक' की उर्दू में हम भारत को प्रतिध्वनित होते सुनते हैं ।

उर्दू ग़ज़ल का मुख्य विषय वही है जो जीवन का मुख्य विषय है, जिसमें प्रेम और सौंदर्य के विषय को प्रमुख स्थान प्राप्त है । दुनिया भर की शायरी में प्रेम और सौंदर्य के सम्बन्धों और प्रतिक्रियाओं की गूंज सुनाई देती है । लेकिन इस गुंजन में जब तक तह-दर-तह गहराई न हो, गगन स्पर्शी उच्चता न हो, विश्व के हृदय की धड़कन न सुनाई दे, दैवी और सांसारिक अनुभूतियों का समन्वय और संगम न हो अर्थात् जब तक ऐसी कविता विश्व व्यापक और विश्व-चित्रण करने वाली न हो, तब तक प्रेम-काव्य में या ग़ज़ल की शायरी में विश्व साहित्य बनने का गुण नहीं पैदा होता । 'फिराक' की शायरी में प्रेम-काल सम्पूर्ण विश्व को अपने आलिंगन में लेता हुआ दिखाई पड़ता है ।

'फिराक' डबडबाई आँखों से प्रेम और सौन्दर्य का सच्चे से सच्चा चित्रण करते हैं । ग़म या दुख दिल पर जो दाग धब्बे पैदा कर देता है, ग़म के आँसू उन धब्बों को धो भी देते हैं । 'फिराक' की शायरी में ग़म के आँसू अपनी गोद में लिये हुए नजर आते हैं । इन्हीं आँसुओं के कम्पन की आवाज़ 'फिराक' की ग़ज़लों में हमें सुनाई देती है । इसी गुण को अंग्रेजी कवि मैथ्यु आरनर्ड ने Healing Power कहा है । 'फिराक' की शायरी का यह गुण प्रेम के लगाये हुये घावों और ज़ख़्मों पर मरहम का काम करता है । 'फिराक' साहब की शायरी को पढ़कर कुछ लोगों ने अपने आप को आत्महत्या तक से बचा लिया है किसी ने कहा है कि हर सच्चा कवि Physician of the soul होता है । ऐसा ही फिजिशियन भारत और पाकिस्तान में हजारों लोगों ने 'फिराक' की कविता को पाया है ।

'फिराक' ने उर्दू की इश्किया शायरी की काया - पलट कर दी है। दु:ख के अनुभव को भी अमृत से रचा बसा दिया है। प्रेम के अनुभव को विश्व-अनुभव बना दिया है। 'फिराक' की ग़ज़लें पढ़ने के बाद और उनका प्रभाव ग्रहण करने के बाद जीवन का दिव्य रूप झलकने लगता है। 'फिराक' ने अपने समय की प्रचलित उर्दू कविता की आत्मा ही बदल दी है। उर्दू साहित्य फिराक की ग़ज़लों में नया जन्म लेता हुआ प्रतीत होता है। प्रेम को एक सस्ती, सतही और केवल रोने-धोनेवाली या काम-पीडित, वासनामय प्रेरणा होने से फिराक ने बचा लिया। 'फिराक' से पहले की उच्चतम उर्दू शायरी में भी सांस्कृतिक मूल्य और मान्यताएँ और कद्रें हैं। लेकिन भारतीय और विश्व संस्कृति का जैसा पुनीत संगम फिराक की ग़ज़लों में मिलता है, उसमें हमारी आत्मायें नहा उठती हैं, और फिराक की वाणी अमृत वाणी बन जाती है। भारत ने फिराक की शायरी को एक Discovery of India और अपना पुनर्आत्मज्ञान पाया। खड़ी बोली की नयी प्रतिध्वनियाँ फिराक की कविता में सुनाई पड़ने लगीं और यही कारण है कि लाखों-करोड़ों ऐसे लोग जो केवल हिन्दी जानते हैं और उर्दू से अपरिचित है 'फिराक' की आवाज़ की तरफ खिंचने लगे।

'फिराक' की ग़ज़लों में स्थान-स्थान पर ऐसे शेर आ जाते हैं। जो अत्यंत सूक्ष्म हैं, अर्ध-चेतन अनुभवों और सूक्ष्मतम मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं की तरफ इशारे करते हैं। उर्दू में ऐसी शायरी प्रसिद्ध कवि मोमिन ने की थी और बाद में इस रंग को हसरत मोहानी ने अपनी ग़ज़लों में चमकाया। यह काम बहुत नाजुक है और प्रेम की अवस्थाओं में रहस्यमयता की झलक पैदा कर देता है। 'फिराक' की शायरी उच्चतम कोटि का प्रेम काव्य है। ऐसी कविता में केवल भावों का उद्‌गार नहीं होता, उनका विश्लेषण भी होता है, बल्कि भावों और अनुभवों का एक्स रे हो जाता है।

'फिराक' की कविता में केवल मानसिक दशाओं का चित्रण नहीं मिलता, इन दशाओं की पावनता, बल्कि दिव्यता का एहसास मिलता है। कविता का काम यही है कि भौतिक दिव्यता का एहसास या अनुभव करा दे, क्षणिक को अमर होने का अनुभव करा दे और अस्तित्व की पावनता और

दिव्यता का एहसास करा दे। 'फिराक' इसी अनुभव को हिन्दू संस्कृति की सबसे बडी देन समझते हैं। फिराक की कविताओं में हिन्दू संस्कृति का पुनर्जागरण या पुनरुत्थान आर.एस.एस., जनसंघ, आर्य-समाज या हिन्दू महासभा वाला पुनर्जागरण नहीं है। इसमें रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, रामतीर्थ, अरविन्द घोष, आनन्द कुमार स्वामी और राजा राममोहन राय के यहाँ जो हिन्दुत्व मिलता है उसी की आत्मा और सुगन्ध है। सबसे ऊँचा, पवित्र और जीवनदायी, सबसे बहुमूल्य अनुभव भौतिक अनुभवों का आध्यात्मिक अनुभव बन जाता है। 'फिराक' साहब की कविता हमें यही अनुभव कराती है जिसे हम संस्कृति कहते हैं। वह व्यक्तियों और जातियों को एक तबीयत या मिजाज दे देती है। फिराक की कविता ने इस युग का मिजाज बनाया है। हिन्दू तो हिन्दू, यहाँ के मुसलमानों के इस्लामी मिजाज की तह या गहराइयों में भारतीय मिजाज सन्निहित है। उसी मिजाज को फिराक की शायरी ने उभार दिया है।

डॉ. इबादत बरेलवी ने फिराक साहब की शायरी पर बड़ी ही सटीक टिप्पणी करते हुए कहा है कि – "फिराक ने इजतिमाई ज़िन्दगी के मामलात और मसाइल को नये ढंग से देखा है उनके यहाँ नये दौर के इन्सान का शऊर नज़र आता है।"

'फिराक' साहब की बेहद मशहूर ग़ज़ल का मत्ला और दो शेर देखिए –

बहुत पहले से उन कदमों की आहट जान लेते हैं,
तुझे ए ज़िन्दगी हम दूर से पहचान लेते हैं।
तुझे घाटा न होने देंगे कारोबार ए उल्फत में,
हम अपने सर तेरा ऐ दोस्त हर नुकसान लेते हैं।
रफ़ीके ज़िन्दगी थी अब अनीसे वक्त आखिर है,
तेरा ऐ मौत हम ये दूसरा एहसान लेते हैं।

'फिराक' साहब के कुछ और लतीफ शेरों का लुत्फ लिजिए –

मैं देर तक न तुझे खुद रोकता हमदम,
तू जिस अदा से उठा है उसीका रोना है।
जिनकी सदा ए दर्द से नींदे हराम थीं,
नाले अब उनके बन्द हैं तुमने सुना नहीं।

बहुत लतीफ़ इशारे है दौरे हाजिर के,
कुछ आज अहले सुकूं भी हैं तिलमिलाए हुए।

ए निजामे कोहन कुछ आहट ले,
वो दबे पाँव मौत आई देख।
वो शोख किसी सूरत अपना भी नहीं होता,
और ये भी नहीं मुमकिन समझे उसे बेगाना।

'फिराक' साहब की एक खूबसूरत रुबाई देखिए –

प्रेमी के साथ खाने का वो आलम,
फूलके पे हाथ तो जिस्मे नाजुक में वो खम।
लुक्मे के उठाने में कलाई की लचक,
दिलकश कितना है मुँह का चलना कम कम ॥

और अन्त में ये दो शेर देखिए –

रात भी नींद भी कहानी भी,
हाय क्या चीज है जवानी भी।

अपनी मासूमीयत के परदे में,
हो गई वो नज़र सयानी भी।

• • •

कबीर : बहु आयामी प्रतिभा के धनी

मध्यकालीन भारतीय साहित्य में कबीर का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कबीर का विशेष महत्त्व इसलिए भी है कि कबीर ने अपने युग की प्रत्येक चेतावनी को सहर्ष स्वीकार करते हुए समाज सुधार का अलख भी जगाया है। उनकी वाणी के प्रमुख विषय दार्शनिक, धार्मिक और सामाजिक हैं। कबीर एक प्रखर चिंतक थे। कबीर की चिंतन पद्धति प्राचीन भारतीय धर्म और संस्कृति से प्रभावीत थी।

धर्म और सम्प्रदाय के भेदभाव के विरुद्ध क्रांतिकारी कदम उठानेवाले, उपासना के बाह्य विधि-विधान की अपेक्षा आन्तरिक भावों और व्यवहार की सत्यता तथा शुद्धता पर बल देनेवाले, गरीबों, पददलितों, अस्पृश्यों और उपेक्षितों की आह को बलवती बनानेवाले पुरानी रूढी-रीतियों और अन्धविश्वासों की चक्की में पिसती हुई जनता के विचारों में उथल-पुथल मचाकर उन्हें जीवनी शक्ति प्रदान करनेवाले कबीर एक महान सन्त थे। पंडितों और मुल्लाओं, नवाबों और राजाओं की उन्होंने तनिक भी परवाह न की और अपने विचारों पर सदा अडिग रहे। राम-रहीम और केशव-करीम की एकता का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने एक ओर पंडितों को धिक्कारा और दूसरी ओर मुल्लाओं को फटकारा जो जनता में भेदभाव की दीवारें खड़ी कर रहे थे और अपने स्वार्थ के लिए जनता को परस्पर लड़ाते थे।

कबीर की जन्मतिथि के संबंध में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। ऐसा भी माना जाता है कि कबीर का जन्म एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था, जिसने लोकलाज के भय से उन्हें काशी के लहरतारा नामक तालाब के किनारे फैंक दिया था तथा उधर से गुजरनेवाले जुलाहा जाति के नि:संतान दम्पति नीरु-नीमा ने वहाँ से उठाकर अपने घर लाकर पालन-पोषण किया। यह मान्यता भी प्रचलित है कि जिस जुलाहा जाति के परिवार में कबीर का पालन-पोषण हुआ, वह कुछ समय पहले सामुहिक रूप से धर्म परिवर्तन करके मुसलमान हो गये थे, लेकिन उसमें हिन्दू संस्कार अवशिष्ट थे ही। इस सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य' में लिखा है कि "यह जुलाहा जाति नाथपंथी योगियों की शिष्य थी

और उनमें विश्वास और संस्कार पूरी मात्रा में वर्तमान थे। मुसलमान ये नाम मात्र थे।"

धन हीन परिवार में पालन पोषण होने के कारण कबीर को विधिवत शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला क्योंकि उन दिनों शिक्षा धनियों और कुलीनों के ही सौभाग्य की बात थी। कबीर ने स्वयं कहा है –

मसि कागद छुयो नहीं, कलम गही नहीं हाथ।

परन्तु कबीर बचपन से ही साधु-संतो, पीरों-फकीरों, नाथपंथ के जोगियों के सत्संग में रुचि रखते थे, अत: वे बहुश्रुत हो गये थे।

आगे चलकर कबीर रामानंद के शिष्य हो गये। उन्होंने लिखा भी है –

सतगुरु परताप ते मिटि गयो सब दुख द्वंद।
कहा कबीर दुविधा मिटी, गुरु मिलियों रामानंद॥

बहुतायत विद्वानों का यह मत है कि कबीर रामानन्दजी के शिष्य थे। इस विषय में जनश्रुति है की आचार्य रामानन्द ने कबीर को शिष्य बनाना अस्विकार कर दिया क्योंकि वे ऊँची जाति के न थे। कबीर एक दिन ब्रह्ममुहूर्त में अन्धकार में गंगा के एक घाट की सीढियों पर लेट गए, जिस घाट पर स्वामी रामानन्दजी स्नान के लिए जाया करते थे। जब रामानन्दजी आए तो उनके पाँव की ठोकर कबीर को लगी। ठोकर लगते ही रामानन्दजी के मुख से निकला –

बेटा, राम कह।

बस, कबीर ने उसी को गुरुमन्त्र मान लिया। परन्तु कबीर के राम विष्णु के अवतार दशरथ सुत राम न थे। उनके राम तो निर्गुण ब्रह्म थे। इसीलिए उन्होंने कहा है –

दशरथ-सुत तिहुँ लोक बखाना।
राम नाम का मरम न जाना॥

हिन्दी साहित्य के संत कवियों में सन्त कबीर का स्थान एवं उनका व्यक्तित्व अद्वितीय, अद्‌भुत एवं अनुपम है। कबीर के स्तर का फक्कड़, मस्तमौला, प्रतिभाशाली एवं महिमामंडित व्यक्तित्व अन्यत्र नज़र नहीं आता है। उनके व्यक्तित्व को किसी बने बनाए चौखटे में जकड़कर मूल्यांकित नहीं किया जा सकता। उनका बहु आयामी व्यक्तित्व बड़ा ही विविधता पूर्ण एवं व्यापक है। इसीलिए तो कबीर को जिसने जिस दृष्टिकोण से देखा उसने

उन्हें उसी के अनुरूप रेखांकित करने की कोशिश की है। तभी तो किसी ने उन्हें तत्वदर्शी किसी ने योगमार्गी, किसी ने सूफीमत का ऋणी, किसी ने श्रमण संस्कृति का उपकृत, किसी ने वैष्णव भक्त, किसी ने अद्वैतवादी, किसी ने निर्गुण-निराकारोपासक, किसी ने विद्रोही क्रांतिकारी किसी ने सारग्राही समन्वयवादी तो किसी ने स्वतंत्र मौलिक चिंतक की उपाधियों से अलंकृत किया है। 'मसि कागद छुओ नहीं, कलम गही नहीं हाथ' के बावजूद भी कबीर पढ़े-लिखों से अधिक, समझदार, विवेकी एवं ज्ञानी थे। उन्हें तो 'कागद की लेखी' से 'आँखिन की देखी' पर अधिक भरोसा था। तभी तो उन्होंने लिखा है 'तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आंखिन की देखी'। कबीर की वाणी कबीर के अनुभव प्रसूत उदगार हैं।

कबीर के सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है कि – "कबीरदास ने अक्खड़ता योगियों से विरासत में ली। संसार में भटकते हुए जीवों को देखकर कबीरदास करुणा के आँसू नहीं रोए बल्कि कठोर होकर इस संसार की कुरीतियों की निंदा की है। कबीर की यह अक्खड़ता सर्व प्रधान गुण नहीं है। कबीर स्वभाव से फक्कड़ थे, सिर से पैर तक मस्त मौला।"

कबीर जुलाहे का काम करते थे। बीच में भक्ति की लहर आने पर भक्ति के पद गाने लगते थे। वे फक्कड थे, जी में आया काम किया न आया न किया कबीर धन-संग्रह के विरोधी थे। उनका मत था –

साधु न गाँठि बाँधई, उदर समाता लेय।
आगे पीछे हरि खड़े, जब माँगे तब देय॥

एक बार जब उनका पुत्र कमाल घर में माल ले आया तो कबीर ने बड़े खेद से कहा –

बूड़ा वंश कबीर का, उपजा पूत कमाल।
हरि का सुमिरन छाँडिके, घर लै आया माल।

शीघ्र ही कबीर को गृहस्थी से वैराग्य हो गया। इसीलिए वे कहते हैं।

नारी तो हम भी करी, जो पाया नहीं विचार।
जब जानी तब परिहरी नारी बड़ा विकार॥

इस प्रकार वे उपासना के मार्ग में नारी को विकार मानते थे। कबीर फक्कड़, मौजी और अलमस्त व्यक्तित्व के धनी थे। किसी धर्म या सम्प्रदाय

के पाखंड को वे सहन नहीं करते थे। उन्होंने मूर्ति पूजकों से कहा –

पाथर पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजूँ पहार।
ताते ये चाकी भली, जो पीस खाय संसार ॥

मुल्ला-मौलवियों को भी फटकारते हुए उनके पाखंड पर कुठाराघात करते हुए वे कहते हैं –

कांकर-पाथर जोरि के, मस्जिद लई चुनाय।
ता चढ मुल्ला बाँग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय ॥

वैष्णवों से उन्होंने कहा –

बैसनो हुआ तो क्या हुआ, जो बुझा नहीं विवेक।

हिन्दू मूसलमानों को एक साथ फटकारते हुए कबीर कहते हैं –

अरे इन दुहन राह नहीं पाई।
....
वे हलाल वे झटका मारें आग दुहून घर लागी।
...
कह हिन्दू मोही राम पियारा, मुसलमान रहमाना।
आपस में दोउ लरि-लरि मुये मरम न काहु जाना ॥

कबीर ने केवल आडम्बरों का खंडन ही नहीं किया अपितु अपने मंतव्य और विचार भी अपनी कविता के माध्यम से प्रस्तुत किये हैं। इनमें से केन्द्रीय भाव यह है कि निर्गुण निराकार ईश्वर की उपासना करनी चाहिए उसीसे मुक्ति मिल सकती है। अद्वैत वेदान्त का कबीर पर बहुत प्रभाव था। उन्होंने कहा है –

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जल ही समाना यह तथ कथौ गियानी ॥

जगत के एक-एक कण में एक-एक अणु में कबीर उसी निराकार को व्याप्त मानते हैं –

लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं ही हो गई लाल ॥

इसी भाव को एक अन्य प्रकार से भी उन्होंने कहा है –

खालिक खलक, खलक में खालिक सब घर रह्यो समाई।

बाह्यांडबर और ब्राह्य सौन्दर्य तथा सजाब-बनाव के विरोधी कबीर ने कविता में भी उनकी उपेक्षा की है। वे अक्खड़ तथा फक्कड़ थे। निर्भयता से अपनी बात कहते थे। कविता करना उनका साध्य नहीं, बल्कि मत प्रचार का साधन था। कबीर का भावपक्ष बहुत सबल है, कलापक्ष इतना सबल नहीं है, क्योंकि उसको सुन्दर रूप देने में उन्होंने कोई प्रयास नहीं किया और सम्भवत: यदि वे ऐसा प्रयास करते तो उनकी कविता अपना प्रभाव खो देती। उन्होंने अपने प्रत्येक भाव को प्रबल रीति से अत्यन्त स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त किया है। दार्शनिक बातों में उन्होंने सुने-सुनाये उपमानों और प्रतीकों का प्रयोग किया है। सामान्य दोहों और पदों में उन्होंने लौकिक उपमानों और प्रतीकों को ग्रहण किया है। जीवन की नश्वरता, संसार की क्षणभुंगरता, ईश्वर की सर्वव्यापकता आदि का उन्होंने सरल स्वाभाविक रूप से वर्णन किया है। डॉ. सरनामसिंह ने कहा है – "कबीर की अनुभूति कल्पनाओं से पुष्ट है, भावनाओं से रसित है। रसीली और पुष्ट अनुभूतियाँ लेकर यदि वे सर्वसाधारण की भाषा में व्यक्त करते हैं, तो कुछ इसलिए कि उन्हें सब लोग समझें और कुछ इसलिए कि उनके पास मार्जित शब्दावली नहीं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं की उनके पास प्रौढ़या पुष्ट व्यक्तिकरण नहीं है।"

तथ्य यह है कि कबीर ने साहित्य-सौन्दर्य और लालित्य की परवाह नहीं की। उन्होंने अनुभूतियों को ज्यों का त्यों चित्रित किया है। उनकी अक्खड़ता का आधार उनके हृदय की सत्यता है। इसीसे उनकी वाणी में ओज आ गया है। इसी ओज के कारण वे महाकवि हो गये।

डॉ. सत्यदेव चौधरी का मत है – "यद्यपि कबीर की रचनाओं में पुनरूक्ति, दार्शनिक भावों की जटिलता, पिंगल के नियमों का उल्लंघन, भाषा का परिमार्जित न होना आदि कई बातें कविता की आदर्श परिभाषा के अनुसार व्याघात बन कर आ गई हैं। किन्तु भाव पक्ष इतना प्रबल है कि उसके सामने कलापक्ष नगण्य है। कबीर में प्रतीभा थी और मौलिकता थी। उन्हें तो संदेश देना था, उन्हे मात्रा गिनने की आवश्यकता न थी और न भाषा को सान पर खरादने की अपेक्षा।"

कबीर की भाषा 'पचमेल खिचड़ी' है। उसमें हिन्दी, उर्दू, खड़ी बोली, फारसी, अरबी, अवधी, भोजपुरी, पंजाबी, मारवाडी, अपभ्रंश आदि के भाव आ गए हैं। वस्तुत: उन्होंने देश के अनेक स्थानों का भ्रमण किया था, मत-

वादों के साधु-फकीरों का सत्संग किया था, इस कारण उनकी कविता में विभिन्न भाषाओं का प्रयोग होना स्वाभाविक ही था।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की भाषा की सबलता की सराहना करते हुए कहा है – "भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रुप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रुप में भाषा से कहलवा दिया है। बन गया तो सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कबीर के सामने कुछ लाचार-सी नज़र आती है। उसमें मानों ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को नाही कर सके। अकथ कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देनै की जैसी ताकत कबीर की भाषा में है, वैसी बहुत कम लेखकों में है।"

कबीर अंधविश्वासों पर न केवल कोड़े बरसाते थे, बल्कि अपने व्यवहार द्वारा भी उनका विरोध करते थे। प्रचलित मान्यता के अनुसार काशी में मरने से मोक्ष और मगहर में मरने से गधे का अवतार मिलता है। अत: अपने अंत समय वे जान-बूझकर मगहर गये और वहीं अपने प्राण त्यागे। आज भी मगहर, में उनका रोजा मिलता है।

योगियों तथा सूफी-फकीरों के संसर्ग से कबीर निर्गुण उपासना में प्रवृत्त हुए। उनका दर्शन भारतीय ब्रह्मवाद, सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद तथा वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का सम्मिश्रण है। उनकी वाणी 'निर्गुण बानी' कही जाती है। वे घट-घट निवासी निरंजन, निराकार ईश्वर में विश्वास रखते हैं और मूर्तिपूजा तथा धर्म के अन्य बाहरी विधि-विधानों बाह्याडंबरी, ढकोसलों का प्रखर विरोध करते हैं। वे कहते हैं –

कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूँढे बन माँहि।
तैसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहि॥

इसी भाव को कबीर इस तरह भी व्यक्त करते हैं –

मोको कहाँ ढूँढे बन्दे, मैं तो तेरे पास में,
ना मैं मंदिर, ना मैं मस्जिद, ना काबा, कैलास में।

ऐसे ही कुछ और दृष्टान्त देखिए जिनमें कबीर ने बाह्याडंबरों, ढकोसलों का खुलकर विरोध किया है –

न्हाये धोय क्या भया जो मन-मैल न जाय ।
मीन सदा जल में रहे धोये बास न जाय ।।

केसन कहा बिगारिया जो मुडौ सौ बार ।
मन को कहा न मूँडिये जामे विषय विकार ।।

मूँड मुड़ाये हरि मिले, सब कोई लेय मुडाय ।
बार-बार के मूँडते, भेड़ न वैकुँठ जाय ।।

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि ।
मनुआ तो दस दिसी फिरै, यह तो सुमिरन नाहि ।।

भाव-भक्ति को कबीर कर्म और ज्ञान से भी श्रेष्ठ और उच्च मानते हैं । इसके बावजूद वे दिखावे से, बाह्याडंबरो से दूर रहते हैं ।

भाव - भगति विसवास बिन, कटै न संसै सूल ।
कहे कबीर हरि भक्ति बिन, मुक्ति नहीं रे मूल ।।

कबीर प्रेममूलक भक्ति के पक्षपाती हैं । वे मनुष्य-प्रेम के उपासक हैं । ऐसा प्रेम जो मोह और विकार से दूर हो, जो सच्चा प्रेम हो । ऐसे प्रेम की राह पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान है –

कबिरा यह घर प्रेम का, खाला का घर नाँहि ।
सीस उतारै भुइ धरै, सो पैठे घर माँहि ।।

प्रेम न बारी उपजे प्रेम न हाटि बिकाइ ।
राजा परजा जे रुचै सीस देही लै जाइ ।।

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, भया न पण्डित कोय ।
ढाई अच्छर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय ।।

कबीर की कविता में उपदेशों की कविता अधिक है । यहाँ तक कि तीन-चोथाई कविता उपदेशमय है । उनका मत है कि जीवन में माया से बचने का प्रयत्न सतर्कता से करना चाहिए क्योंकि वह बड़ी ठगिनी है । और त्रिगुण पाश लेकर मनुष्य को फाँसने के लिए घूमती रहती है । इसने देवी-देवताओं, इन्द्र और महादेव तक को नहीं छोड़ा । शारीरिक सौन्दर्य का गर्व और धन-ऐश्वर्य का अभिमान माया का सबसे मोहक रूप है । परन्तु मनुष्य को यह कभी न भूलना चाहिए कि मनुष्य का अस्तित्व पानी के बुलबुले के समान अथवा

प्रभातकालीन तारों की तरह क्षण-स्थायी होता है। बड़े-बड़े महल गिर जाते हैं। इस शरीर का गर्व क्या करना ? यह तो मल का स्थान है – इसे सुगंधित द्रव्यों से सुवासित करना हास्यास्पद है। स्नान से उद्धार होता है, तो सब मछलियों को सर्वप्रथम मुक्ति मिलनी चाहिए। इस देह का गर्व क्या, जिसे अन्त में श्वान, शूकर और कीडे खाएँगे। जब एक ही वायु है, एक ही पानी – तो ब्राह्मण की रसोई अलग और शूद्र की अलग कैसे हुई ? एक ब्राह्मण तो दूसरा शूद्र कैसे ? यदि ब्राह्मण श्रेष्ठ है तो औरों के समान गर्भवास का कष्ट क्यों पाया ? स्वार्थ और लोभ पतन के कारण हैं। दुर्बल को सताए बिना व्यक्ति धनी नहीं बन सकता। परन्तु दुर्बल की आह बुरी होती है। मनुष्य जीवन संवारना हो, तो प्राणिमात्र पर दया करनी चाहिए। यही धर्म का मूल है। सत्य के बराबर तप नहीं है, झूठ के समान पाप नहीं है। कथनी और करनी में अन्तर नहीं होना चाहिए। कबीर कहते हैं –

कथनी मीठी खांड सी, करनी विष सी लोय।
कथनी तजि करनी करे, विष से अमृत होय ॥

ऊँचे कुल में जन्म पाने का अभिमान भी व्यर्थ है –

ऊँचे कुल क्या जनमिया जो करनी उँची न होई।
सोब्रन कलस सुरे भरा साधु न निंदा सोइ ॥

श्रेष्ठ करनी के बिना किसी का उद्धार नहीं हो सकता। यह माया ही पिशाचिनी है, पापिनी है, डायन है, ठगिनी है, इसके जाल से योगी, यति, मुनि, पीर-पैंगबर, शिव विरंति-नारद कोई नहीं बचा। वे कहते हैं –

माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया शरीर।
आशा तिसना ना मुई, यूँ कह गया कबीर ॥

भक्ति, संतोष, नम्रता, सत्य, सत्संग और विवेक से ही आत्मा का उद्धार हो सकता है। गुरु की कृपा के बिना यह सम्भव नहीं है। अत: गुरु के श्री चरणों में झुकना चाहिए। गुरु की महिमा का गुणगान कबीर की इन पक्तियों में स्पष्ट परिलक्षित होता है –

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।
लोचन अनन्त उघाडिया, अनन्त दिखावनहार ॥

गुरु को ईश्वर के समकक्ष रखते हुए कहते हैं –

गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काके लागों पाय।
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय ॥

गुरु के गुणों को, उनकी महिमा को अवर्णनीय बतलाते हुए वे कहते हैं –

सब धरती कागद करुँ, लेखनी सब बनराय।
सात समुंद की मसि करुँ, गुरुगुन लिखा न जाय ॥

अन्त में, कबीर ने ब्रह्म मिलन के आस्वाद के विषय में जो कुछ कहा है, वही उनकी कविता के विषय में कहा जा सकता है, क्योंकि उनका कवित्व अकथनीय है, अवर्णनीय है –

गूँगे केरी सरकरा बस बैठे मुसकाई।

• • •

पदमावत में पौराणिक पात्र - कथा निरूपण

मध्ययुगीन भारतीय लोकजीवन में कथा - कहानियों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है । मलिक मुहम्मद जायसी मध्ययुगीन लोकजीवन की उसी भारतीय परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं। शिक्षा की दृष्टि से और मनोरंजन की दृष्टि से भी कथा-कहानियों का जीवन में विशेष स्थान था। फिल्मों और दूरदर्शन के इस युग में तथा नगरीय जीवन में आज चाहे किस्से कहानियों का कहने-सुनने का पहले जैसा महत्त्व नहीं रहा है, लेकिन ग्रामीण जीवन में आज भी उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। शाम ढलते ही गाँव की चौपाल पर बैठे कथा-कहानियाँ कहते-सुनते लोग या फिर घरों में दादी-नानी से कहानियाँ सुनते बच्चे आज भी देखे जा सकते हैं। हाँ, इतना जरूर है कि आज यह परम्परा गाँवों में भी अब धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही है। फिल्मों और दूरदर्शन ने वहाँ भी अपना प्रभाव ज़माना शुरु कर दिया है। इसके बावजूद इन किस्से कहानियों में रामायण, महाभारत की कथाओं और पौराणिक आख्यानों का महत्त्व तो रहा ही है। साथ ही पंचतंत्र, सिंहासन बत्तीसी, बेताल पच्चीसी, आदि की कथाएँ भी लोकजीवन के साथ घुलमिल गई हैं। इन कथाओं के अलावा लोकजीवन में एक बहुत समृद्ध परम्परा ऐसी कथाओं की भी है, जिसका 'मसि-कागद' से कोई सम्बन्ध नहीं रहा और जिनके रचयिताओं ने भी अपनी अलग पहचान न बनाकर लोक-सागर में स्वयं को बूँद की भाँति एकाकार कर दिया। लोक मानस में रची-बसी ये कथाएँ मौखिक रूप में ही एक स्थान से दूसरे स्थान तक और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँची हैं। इन कथाओं में प्रेम का वातावरण बनाने और समाज में एक-दूसरे को जोड़ने की जो अद्भूत क्षमता थी उसे प्रेममार्गी सूफी कवियों ने बखूबी पहचाना था।

इन्हीं प्रेममार्गी सूफी कवियों की शाखा के कवियों में सर्वश्रेष्ठ पद के अधिकारी है, मलिक मुहम्मद जायसी। जायसी का काव्य कथाओं की दृष्टि से भी सर्वाधिक सम्पन्न है। अकेले 'पदमावत' में रामायण, महाभारत तथा

पुराणों से सम्बन्ध कथा प्रसंग भरे पड़े हैं। इनके अतिरिक्त जायसी ने अपने समय की अनेक लोक प्रचलित लोक कथाओं का उल्लेख और उपयोग भी 'पदमावत' में किया है। सैंकड़ों कथाओं-कथा प्रसंगों का भलीभाँति ज्ञान जायसी की संग्रहण क्षमता को तो दर्शाता ही है। साथ ही उनकी बहुश्रुतता का भी परिचायक है। रामायण, महाभारत, पुराणों आदि से सम्बन्ध कथाओं का ज्ञान उन्होंने उन्हें पढ़कर नहीं, बल्कि समाज से सुनकर प्राप्त किया था। इसका प्रमाण इनके काव्य में प्रयुक्त कथा-प्रसंगों के रूप में है। इन कथा प्रसंगों का उल्लेख जायसी ने अपने कथा-ज्ञान के प्रदर्शन के लिए नहीं किया था। सादृश्य-विधान के अन्तर्गत, उदाहरणों या दृष्टान्तों आदि के रूप में ये भावाभिव्यक्ति की स्वाभाविक शैली के रूप में उनके काव्य में आए हैं। जितनी सूक्ष्मता के साथ जायसी ने लोक को समझा और पहचाना था उतनी सूक्ष्मता के साथ समझने और पहचाननेवाले कवि कम ही मिलेंगे। लोक हृदय का लगाव और जन-मानस में छाया हुआ राम-कथा का प्रभाव जायसी की लोक परक सूक्ष्म दृष्टि से बच नहीं पाया है। यही कारण है कि सादृश्य- विधान के अन्तर्गत अथवा उदाहरणों और दृष्टांतों की योजना करते समय पदमावत में इस कथा से सम्बद्ध पात्रों एवं घटनाओं का भरपूर उपयोग किया गया है।

सूफी कवियों की एक प्रमुख विशेषता यह भी रही है कि उन्होंने मुसलमान होते हुए भी हिन्दू-परम्पराओं में प्रचलित कथाओं को अपने काव्य का आधार बनाया है। जायसी राम कथा से भलिभाँति परिचित थे और यह भी जानते थे कि हिन्दुओं में प्रचलित जिन कथाओं को वे अपने काव्य का आधार बना रहे हैं, उनमें सबसे अधिक व्यापक और प्रचलित कथा राम कथा है। क्योंकि हिन्दुओं के लिए राम कथा एक कथा-मात्र न होकर उनकी धार्मिक भावनाओं के साथ गहराई से जुड़ा हुआ एक आध्यात्मिक आख्यान भी है। सूफी कवि इस तथ्य से भलीभाँति अवगत थे कि किसी वर्ग या सम्प्रदाय विशेष के धार्मिक आख्यानों में की गई हेरफेर या मनमानी छेड़छाड़ को उस वर्ग के लोग स्वीकार नहीं करेंगे। इसीलिए जायसी ने सीधे-सीधे रामकथा को अपने काव्यों का आधार न बनाकर अपने भावों की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए दृष्टान्तों, उदाहरणों आदि के रूप में उसका उपयोग

करना ही अधिक उचित समझा और इसमें उन्हें पूर्ण सफलता भी मिली। तो प्रश्न यह उठता है कि क्या जायसी ने राम कथा साहित्य का विधिवत अध्ययन किया होगा ? वस्तुत: जायसी के सम्प्रदाय और उनकी शिक्षा-दीक्षा देखते हुए यह संभावना न के बराबर प्रतीत होती है। वैसे भी इस देश में राम कथा से परिचित होने के लिए पुस्तकीय अध्ययन की आवश्यकता भी नहीं है। इसका लोकाधार इतना व्यापक, इतना विशाल और इतना गहरा है कि उससे जुड़ा कोई भी व्यक्ति इस कथा के सम्पर्क में और इसके प्रभाव से बच नहीं सकता है। रामकथा-सम्बन्धि प्रसंगों या घटनाओं का रूप भी इस बात की पुष्टि करता है कि जायसी के तत्सम्बन्धि ज्ञान का स्रोत लोक-परम्परा ही है, न की साहित्य परम्परा।

राम के पिता और माता के रूप में क्रमश: दशरथ और कौशल्या का उल्लेख जायसी कृत पदमावत में कतिपय स्थलों पर मिलता है। एक उदाहरण देखिए –

तहुँ एक बाउर मैं भैंटा। जैस राम दशरथ कर बेटा ।।413-4।।

सिंहलद्वीप से चित्तौड लोटने पर राजा रत्नसेन का अपनी माँ से मिलन को जायसी ने राम और कौशल्या के मिलन के रूप में उत्प्रेक्षित किया है।

बिहसी आइ माता कहँ मिला।
जनु रामहि भेटै कोसिला ।।426-2।।

भौंहो के वर्णन के लिए धनुष का उपमान के रूप में उल्लेख तो बहुप्रचलित है ही, लेकिन जायसी ने इसे प्राचीन आख्यानों के साथ जोड़कर उसे विशिष्टता प्रदान कर दी है। पदमावती के भौंहों के वर्णन के प्रसंग में जायसी ने इसे राम-कथा के साथ भी सम्बद्ध किया है –

उहै धनुक किरसुन पहँ अहा।
उहै धनुक राधौ कर गहा ।।102-3।।

रामायण की लोक प्रसिद्ध घटनाओं में परशुराम से सम्बद्ध भी अनेक घटनाएँ हैं, और उन सब में सर्वाधिक प्रसिद्ध घटना है, राम के द्वारा शिव-धनुष का भंग होना और इस पर परशुराम का क्रोध करना। किन्तु जायसी ने इस प्रसंग का उल्लेख नहीं किया एक स्थान पर पदमावती ने बादल और

गोरा की वीरता, साहस और युद्ध कौशल की प्रशंसा करते हुए इनकी उपमा परशुराम और कर्ण से दी है –

तुम्ह सो परसु औ करन बखाने ।।611-5।।

पदमावती के नख-शिख वर्णन के प्रसंग में भौंहो का वर्णन करते हुए कवि ने उनकी उपमा धनुष से दी है, लेकिन साथ ही पौराणिक कथाओं से अनेक नामों और उनसे सम्बन्ध घटनाओं का उल्लेख कर उपमान को विशिष्टता प्रदान करते हुए उपमेय का वैशिष्ट्य सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

एक पंक्ति देखिए –

उहै धनुक वेधा हुत राहु। मारा जोही सहस्सरबाहु ।।102-5।।

एक और स्थान पर सहस्रबाहु के विशालकाय रूप का उल्लेख जायसी ने इन शब्दों में किया है –

धरती पाय सरग सिर जानहु सहसराबाहु ।।390।।
रामा आइ अजोध्याँ उपने लखन बतीसौं अंग।
रावन राई रूप सब भूलै दीपक जैसे पतंग ।।52।।

अर्थात् यह पदमावती बत्तीस लक्षणों से युक्त पूर्ण सर्वांग सुन्दरी उसी सीता के समान है जो अयोध्या में आई थी और जिसके रूप पर मुग्ध होकर रावण सब कुछ भूल गया था उसी प्रकार जिस तरह पतंगा दीपक पर मुग्ध होकर सब कुछ भूल जाता है।

रत्नसेन के सिंहलद्वीप चले जाने पर उसकी माता के दुख को व्यंजित करने के लिए जायसी ने लोक प्रचलित मातृ-पितृ भक्त श्रवणकुमार की कथा का आश्रय लिया है। वे कहते हैं –

को रे चलाव सरवन के ठाऊँ। टेक देहि ओहि टेकौं पाऊँ ।।
तुम्ह सरवन होइ कावरि सजी। डारि लाई सो काहे तजी ।।
सरवन सरवन कै ररि मुई सो काँवरि डारहि लागी ।।
तुम्ह बिनु पानि न पावै दसरथ लावै आगी ।।362।।

आगे भी एक स्थान पर लगभग इसी प्रकार की भावाभिव्यक्ति मिलती है –

जस सरवन बिनु अंधी अंधा। तर ररि मुई तोहि चित बंधा ।।
केहसि मरौ अब काँवरि रेई। सरवन नाहिं पानि को देई ।।

गई पियासी लागि तेही साथाँ । पानि दिहें दसरथ के हाथाँ ।।
पानि न पियै आगि पै चाहा । तोहि अस पूत जरम अस लाहा ।।
।।368-3-6।।

उपर्युक्त पंक्तियों में पूर्व उद्धृत पंक्तियाँ पक्षी द्वारा रत्नसेन को संदेश भेजने के लिए उसे समझाने के प्रसंग में हैं, तो बाद की पंक्तियाँ पक्षी द्वारा रत्नसेन को संदेश सुनाने से सम्बद्ध हैं। इसलिए अभिव्यक्ति की यह समानता स्वाभाविक ही कही जाएगी। एक स्थान पर नागमती के द्वारा राम वनवास की घटना की ओर भी संकेत मिलता है –

रोवै नागमती रनिवासू। केईं तुम्ह कंत दीन्ह बनबासू ।।131-1।।

राम वनवास की इस घटना का उपयोग जायसी ने अनेक प्रकार से किया है। एक ओर कुछ स्थलों पर इस घटना को पात्रों के कथोपकथन से जोड़कर उनके तर्क के रूप में प्रयुक्त किया गया है तो वहीं दूसरी ओर इसे कथन की पुष्टि का आधार भी बनाया गया है।

जब रत्नसेन योगी के रूप में सिंहलद्वीप जाने को उद्यत होता है तब नागमती उसे ऐसा करने से मना करती है। लेकिन रत्नसेन किसी भी प्रकार से रुकने को तैयार नहीं होता है, तब नागमती भी साथ चलने का आग्रह करती है। अपने इस आग्रह के औचित्य की पुष्टि में वह राम- सीता का दृष्टान्त देते हुए कहती है –

तुम्ह अस बिछुरे पीउ पिरीता। जहवाँ राम तहाँ सँग सीता ।।
।।131-4।।

इसके बावजूद रत्नसेन उसकी उपेक्षा करता हुआ राम कथा से ही सम्बद्ध सीताहरण की घटना का तर्क देकर राम के द्वारा सीता की बात मानने को एक बहुत बडी भूल निरूपित करता हुआ कहता है –

राधौ जो सीता सँग लाई। रावन हरी कवन सिधि पाई ।।132-1।।

पदमावत में इसका भी संकेत मिलता है कि रावण ने सीता का हरण किस प्रकार किया था। 'पदमावती-रत्नसेन-भेट-खण्ड' इसमें दोनों की प्रेम पूर्ण नोक-झोंक में जायसी ने पदमावती के मुख से ही कलहावाया है कि रावण ने सीता का हरण 'जोगी' अर्थात् साधु के वेश में छल से किया था।

तैं तेहि भाँति सिस्टि यह छरी। एहि भेस रावण सिय हरी

॥306-5॥

वनवास के दौरान सीता-हरण के कारण राम और सीता एक- दूसरे से बिछुड़ जाते हैं। जायसी ने रत्नसेन और पदमावती की विरहदशा को राम और सीता की विरह दशा से जोड़कर उनके विरह की तीव्रता को अभिव्यंजित करने का सफल प्रयत्न किया है। सिंहलद्वीप से पदमावती को साथ लेकर समुद्रपार करते समय राजा रत्नसेन का जहाज तूफान में फँसकर टूट-फूट जाता है। समुद्र में उठे तूफान के कारण रत्नसेन और पदमावती परस्पर बिछुड़ जाते हैं। रत्नसेन के वियोग में पदमावती की दशा की प्रभावपूर्ण व्यंजना के लिए उसे लंका की अशोक वाटिका में वियोगिनी सीता की दशा के साथ जोड़कर जायसी ने पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

पदुमावतिहि सोग तस बीता। जस असोग बीरौ तर सीता

॥414-1॥

पदमावत में हनुमान के पराक्रम और बुद्धिमता पूर्ण कृत्यों का उल्लेख अपेक्षाकृत अधिक हुआ है, जो उनकी तदयुगीन सामाजिक प्रसिद्धि या लोकप्रियता का सूचक है। एक उदाहरण देखिए –

औ हनिवंत वीर सँग आवा। धरे वेष जनु बंदर छावा ॥207-6॥

राम-सीता के पुनर्मिलन में हनुमान की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। जायसी ने एक स्थल पर हनुमान के इस महत्त्व को रेखांकित किया है –

सीता हरन राम संग्रामा। हनिवंत मिला मिली तब रामा ॥405-6॥

'पदमावती-गोरा-बादल-संवाद-खण्ड' में बादल और गोरा की उपमा क्रमश: अगंद और हनुमान से की गई है। पदमावती कहती है –

तुम्ह सावँत नहिं सरबरि कोऊ। तुम्ह अंगद हनिवँत सम दोऊ ॥

॥611-2॥

इसी तरह एक और स्थान पर जब गोरा और बादल पदमावती से बीड़ा लेकर राजा रत्नसेन को मुक्त कराने की प्रतीज्ञा लेते हैं, उस समय जायसी उनकी इस प्रतिज्ञा की तुलना रामकाज के लिए अंगद और हनुमान द्वारा किए गए प्रण से करते हैं। वे कहते हैं –

गोरा बादल बीरा लीन्हा। जस अंगद हनिवँत बर कीन्हा

॥612-1॥

रत्नसेन को मुक्त कराने पर पदमावती बादल की प्रशंसा करती हुई

कहती है –

तुम्ह हनिवँत होइ धुजा बईठे। तब चितउर पिय आइ पईठे

॥641-7॥

यहाँ पर जायसी का संकेत उस कथा से जान पड़ता है जिसमें कहा जाता है कि हनुमान ने अर्जुन के ध्वज पर बैठकर महाभारत में उनकी सहायता की थी।

विरह जन्य दाह की तीव्रता को व्यक्त करने के लिए जायसी लिखते हैं कि लंका में लगी आग तो बुझ गई, लेकिन पदमावती के शरीर में ऐसी वज्राग्नि उत्पन्न हुई जो बुझती ही न थी –

लंका बुझी आगि जौ लगी। यह न बुझे तसि उपजि बजागी

॥253-23॥

इसी प्रकार नागमती-वियोग-वर्णन के प्रसंग में भी इस घटना का उपयोग कर विरह की तीव्रता को व्यंजित करने में जायसी ने सफलता प्राप्त की है –

बिरह गाजि हनिवँत होई जागा। लंका डाह करै तन लागा

॥355-2॥

एक स्थान पर एक याचक रत्नसेन के पास आकर भिक्षा माँगते हुए दान देने से होनेवाले लाभ और न देने से होनेवाली हानी का बखान करते हुए अपने कथन की पुष्टि में कुछ दृष्टान्त प्रस्तुत करता है। उन्हीं में से एक इस प्रकार है –

दान करन दै दुइ जग तरा। रावण संचि अगिनि मँह जरा

॥387-6॥

'घर का भेदी लंका ढावै' इस कहावत की झलक पदमावत की निम्नलिखित पंक्ति में भी देखी जा सकती है –

भाइन्ह माँह होइ जनि फूटी। घर के भेद लंक असि टूटी

॥376-2॥

निष्कर्षत : यह कहा जा सकता है कि राम कथा सम्बन्धि प्राय: सभी महत्त्वपूर्ण पात्रों एवं घटनाओं का उल्लेख पदमावत में किसी न किसी रूप में मिल जाता है। इन स्थलों एवं प्रसंगों को यदि पृथक रूप से क्रमबद्ध किया जाए तो राम कथा सम्बन्धी एक स्वतंत्र पुस्तिका तैयार हो सकती है।

ज़िन्दगी में शोर्टकट कितना जरूरी

मित्रों आज का यह विषय 'ज़िन्दगी में शोर्ट कट कितना जरूरी' यकीनन बड़ा ही दिलचस्प और मजेदार है। आज के अत्याधुनिक अर्थ प्रधान युग में जीनेवाला प्रत्येक व्यक्ति शोर्ट कट अपनाते हुए जीवन जीने को उत्सुक रहता है। बहुत कम समय में अपनी अधिक से अधिक इच्छाओं को पूर्ण कर लेना चाहता है। आज की इस भागती-दौड़ती ज़िन्दगी में हर किसी के पास कमी है तो समय की कमी है। इस समयाभाव से ग्रस्त होकर ही वह शोर्ट कट अपनाना चाहता है। लेकिन मित्रों, यह गलत है, अनुचित है, अयोग्य है।

ज़िन्दगी तो ईश्वर से प्राप्त सबसे अनमोल रत्न है। इससे अधिक मूल्यवान इस विश्व में और कुछ भी नहीं है। विश्व का प्रत्येक व्यक्ति यह स्वीकार करता है कि इस विश्व को, इस ब्रह्माण्ड को संचालित करनेवाला कोई सर्व शक्तिमान तो है, कोई सुपरपावर है जो इस संसार को कार्यान्वित किये हुए है। साथ ही विश्व के तमाम व्यक्ति इस सत्य को भी स्वीकार करते हैं कि नसीब, तकदीर, भाग्य जैसी भी कोई चीज है। मनुष्य के जन्म के समय ही वह सर्वशक्तिमान, वह सुपरपावर, इस ब्रह्माण्ड को संचालित करनेवाला उसके भाग्य का निर्माण कर देता है। तभी तो हम उसे भाग्य निर्माता कहते हैं। इस पृथ्वि पर प्रत्येक व्यक्ति की ज़िन्दगी का समयकाल निश्चित है। ईश्वर अपने आयोजन के तहत और व्यक्ति की शारीरिक क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए उसका समयकाल निर्धारित कर देता है। फिर इसमें शोर्टकट कहाँ से आ गया। वास्तव में शोर्ट कट जैसा शब्द मेरे विचार से शब्दकोष में से ही निकाल देना चाहिए। शोर्ट कट अर्थात् संक्षेपीकरण जो कि इस विश्व के रचयिता ने कहीं किया ही नहीं है। यह पृथ्वी पूर्ण है, सूर्य पूर्ण है, चन्द्र पूर्ण है, अग्नि, वायु, पर्वत, जंगल यह पूरा ब्रह्माण्ड पूर्ण है, शोर्ट कट तो कहीं है ही नहीं। यह और बात है कि हमारी प्रज्ञा उस पूर्णता को प्राप्त न कर पाए, उस पूर्णता की तह तक नहीं जा पाती है, और वे व्यक्ति जिनकी प्रज्ञा इस पूर्णता तक पहुँच जाती है वे महात्मा कहलाते हैं, सन्त पुरुष कहलाते हैं, अद्‌भुत और अद्वितीय हो जाते हैं। इस विश्व के

इतिहास में वे अपना नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाते हैं। सदियों तक आनेवाली पीढीयों का वे अपने ज्ञान से मार्ग प्रशस्त करते रहते हैं। मार्गदर्शक बन जाते हैं। शोर्टकट में यह सब नहीं होता है।

मित्रों, शोर्ट कट जैसे शब्द या नीति का सहारा वे लोग लेते हैं, जो जीवन के सत्य को और उसके आनन्द को समझ नहीं पाए हैं। वे व्यक्ति जिनकी महत्त्वांकाक्षाए उच्चाकांक्षाओं की सीमाओं को पार कर गई हैं, वे ही इसका सहारा लेते हैं। वे लोग जो जीवन का सार मात्र भोग विलास में ही देखते हैं, जिनके लिए भौतिक सुविधा ही ज़िन्दगी है, ऐसे लोग ही शोर्ट कट जैसी नीतियों को अपनाते हैं। जीवन में भौतिक सुख सुविधा के क्षणिक और नश्वर आनन्द के लिए जो शोर्ट कट अपनाते हैं, उन्हें वे सुख तो नसीब नहीं हो पाते हैं, हाँ, उनकी अपनी ज़िन्दगी जरूर शोर्ट हो जाती है।

वास्तविक जीवन तो वह है जो सहजता, सरलता और सादगी से जिया जाए। शोर्ट कट यानी संक्षेपीकरण में जीनेवाला व्यक्ति हमेशा हड़बड़ी में और अशांति में रहेगा और हड़बड़ी में, अशांति में कभी भी विवेक सम्मत निर्णय नहीं लिया जा सकता है, और वह निर्णय जो विवेक सम्मत न हो वह निर्णय कभी भी लाभदायक हो ही नहीं सकता है। सरलता, सहजता और सादगी से जीवन जीने में ही सार है। इसीलिए तो विश्व के तमाम धर्म और सम्प्रदाय में शांति से जीवन जीने को महत्त्व दिया गया है। 'सादा जीवन, उच्च विचार' जैसी उक्तियाँ, कहावतें, मुहावरे सैकडों मिल जाएँगे।

सरलता, सहजता और सादगी से जीवन जीते हुए ही मोहनदास करमचन्द गाँधी जैसे व्यक्ति राष्ट्र पिता जैसी अमर उपाधि तक पहुँच पाए। इन्होंने अपने जीवन में यदि कोई शोर्ट कट अपनाया होता तो महात्मा और राष्ट्रपिता जैसे सम्मान प्राप्त नहीं हो पाते। हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जैसी कई महान विभूतियाँ हैं जिन्होंने जीवन को सहजता, सरलता और सादगी से जीते हुए जीवन की पूर्णता को प्राप्त किया।

मित्रो, प्राचीन युग से लेकर आज के इस अत्याधुनिक युग तक एक भी उदाहरण, एक भी दृष्टान्त हम ऐसा नहीं दे सकते हैं कि इस व्यक्ति ने शोर्ट कट से जीवन जीकर अपने को महान बनाया और आनेवाली पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त किया। शोर्ट कट से जीवन जीनेवाले व्यक्ति की ज़िन्दगी में हमेशा शोर्ट सर्कीट ही होता रहता है। सफलता-असफलता तो हमारे परिश्रम पर

निर्भर है। इनसे हताश नहीं होना चाहिए, बल्कि इनसे अनुभव प्राप्त करते हुए आगे कदम बढ़ाना चाहिए, और यह नि:संदेह, निश्चित है कि ऐसा करने से हमें सफलता अवश्य प्राप्त होगी। ज़िन्दगी को कोसना और शोर्ट कट अपनाना कायरता है, दब्बूपन है। मुझे वो पंक्तियाँ याद आ रही हैं –

ज़िन्दगी को कोसनेवाले सफल होते नहीं।
ज़िन्दगी तो नाम है सबसे हँसी सौगात का॥

वे व्यक्ति जो मुसीबतों का, तकलीफों, परेशानियों का डटकर मुकाबला करना जानते हैं, उन्हें सफलता प्राप्त होती है, और ऐसे ही व्यक्ति अमरता को प्राप्त होते हैं। और वे व्यक्ति जो शोर्टकट अपनाते हैं उन्हें सफलता शायद मिल भी जाए लेकिन वे अमरता को प्राप्त नहीं कर पाते हैं। क्योंकि शोर्ट कट शायद एकाध बार सफलता दिला दे लेकिन बार-बार यह सम्भव नहीं है। बार-बार शोर्ट कट में जीनेवाला व्यक्ति धीरे-धीरे हताशा और निराशा की भयानक अतल अंधेरी खाई में गिरता चला जाता है। सत्य और पूर्णता के साथ जीवन जीना कठिन जरुर है, लेकिन इन्ही कठिनाइयों में आनन्द-प्रसन्नता और सफलता विद्यमान है। संक्षेपीकरण से जीवन में संक्षिप्तता आ जाती है और पूर्णता से जीवन में प्रसन्नता प्राप्त होती है। इसीलिए तो कहा गया है कि –

ॐ पूर्णमद: पूर्णम् ईदम् पूर्णाद् पूर्णम् उदच्यते।
पूर्णस्य पूर्ण मादाय पूर्ण मेवावशिष्यते॥

अत: मित्रो, सारांश रूप में मैं यही कहूँगा कि 'ज़िन्दगी में शोर्टकट' बिलकुल निरर्थक है, मूल्यहीन, बेकार और अनावश्यक है।

• • •

उर्दू साहित्य में कौमी एकता

कौमी एकता किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए सबसे पहली शर्त है । यदि कोमों के बीच वैमनस्य है, यदि उनमें मतभेद, मनमुटाव और आपसी बैर की भावना है तो वे हमेशा एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करते रहेंगे । उनकी शक्ति उनके तमाम गुण सही दिशा में लगने की जगह, निर्माण में लगने की जगह विध्वंस में लगने लगेंगे और यही वो वजह है जो कौम को और राष्ट्र को पतन की ओर ले जाती है ।

उर्दू साहित्य कौमी एकता की मिसालों से भरा पड़ा है और सच्चाई तो यह है कि सिर्फ उर्दू साहित्य ही नहीं बल्कि भारत की तमाम भाषाओं में लिखा साहित्य एकता, मानवता और भाईचारे की आधार भूमि पर ही रचा गया है । क्योंकि इस जज्बे के बगैर साहित्य आधा-अधूरा रहता है । जिस भाषा का साहित्य अधूरा हो खाली-खाली सा हो उस कौम की सफलता, प्रगति और विकास कैसे सम्भव हो सकता है ? जब तक आदमी पूर्णत: आदमी नहीं बन जाता है तब तक एकता नहीं आ सकती है । इसीलिए यह कहना बिलकुल यथार्थ और सटीक है कि, प्रेम, सौन्दर्य और शिष्टता भी जीवन के महत्त्वपूर्ण अंग हैं । इनके बिना पूर्ण मानव नहीं बना जा सकता और यदि हम स्वयं मानव नहीं बन सकते हैं तो दूसरों को मानवता का उपदेश कैसे दे सकते हैं । इसी तथ्य को उर्दू के मशहूर फनकार शकील बदायूँनी ने अपनी शायरी में बड़े सलीके से कुछ इस अन्दाज़ में बयान किया है –

मुन्किरे – जात तेरी बहस मुसल्लम लेकिन,
यूं वो कुछ और नुमाया नज़र आता है ।

ऐसा ही एक और शेर देखिए जिसमें यही बात दूसरे अन्दाज़ में कही गई है –

दे सदायें दरे–इन्सां ही पे इन्सान 'शकील',
हाए दुनिया में गरीबों का ख़ुदा क्यों न रहा ।

ये जरूरी नहीं है कि आप किसी की अंगुली पकड़कर ही मंजिल तक पहुँच सकते हैं । आपसी प्रेम व्यवहार आपसी भाईचारे, एक दूसरे

के प्रति सहानुभूति की भावना तो हर व्यक्ति में जन्मजात होती ही है, और उम्र के साथ-साथ यह ज़ज़्बा भी पनपता है। धर्मोपदेशक की बातें सुनकर ही हम एकता स्थापित कर सकते हैं ऐसा नहीं है। कौमी एकता के लिए तो मन में भावना होनी चाहिए। कई दफा तो ऐसा भी पाया गया है कि उपदेशक की बातें असर नहीं कर पाती हैं। उपदेशक के बताए मार्ग पर, राह पर चलकर सफलता नहीं मिल पाती है, और कभी-कभी मन की अवाज़ सुनकर, थोड़ी ही दूर चलकर, थोड़ा ही परिश्रम करके मंज़िल मिल जाती है, सफलता मिल जाती है। शक़ील बड़ी ही खूबसूरती से इसे यूँ कहते हैं –

तेरी गुफ्तगू को नासेह दिले–ग़मजदा से जलकर,
अभी तक तो सुन रहा था, मगर अब ज़रा सँभलकर।
न मिला सुरागे मंज़िल कहीं उम्रभर किसी को,
नज़र आ गई है मंज़िल कहीं दो कदम ही चलकर।

और ऐसा इसलिए होता है कि हर व्यक्ति के अन्दर एक उपदेशक जरूर होता है। हर इन्सान की रूह उस अल्लाह की देन है तो स्वाभाविक है कि उसमें अच्छाईयों का अथाह सागर हिलोरें मारता होगा। कुछ उपदेश देनेवाले उपदेशक तो ऐसे होते हैं जो अपने आपको फरिश्ता ही समझने लगते हैं और सच पूछो तो अपने आपको फरिश्ता समझनेवाले उपदेशक ही कौम को गलत राह पर ले जाते हैं। ऐसे तथाकथित थोपे हुए उपदेशकों को फटकारते हुए शक़ील कहते हैं –

बुतखाने में गो कुफ्र के सामान बहुत हैं।
काबे में भी गारतगरे – ईमान बहुत हैं।
तू ख़ुद को फरिश्ता न समझ वाईजे-नादां,
दुनिया में तेरे रंग के इन्सान बहुत हैं।

उपदेशक की बातों में आकर्षण होता है। ऐसा आकर्षण की इन्सान सब कुछ भूलकर उसी की बातों को आत्मसात कर लेता है और आकर्षण इसलिए होता है क्योंकि उपदेशक की बातें सीधी, सरल और सहज होती हैं। उनकी बातों का एक अपना ही सलीका होता है। उपदेशक की बातों में वो मिठास और मधुरता होती है कि आदमी के मन की सारी कड़वाहट दूर हो जाती है। कौमी एकता के लिए ये बहुत जरूरी है कि उपदेशक

क्या कहता है और कैसे कहता है। क्योंकि यदि उसमें उपदेश देने का सलीका नहीं है, यदि उसे उपदेश देने का तरीका नहीं आता है, यदि उपदेशक की बातों में आकर्षण नहीं है तो यह जान लिजिए की वह कौम को गुमराह ही करेगा। ऐसे नासमझ, बेअदब उपदेशक कौम का नुकसान ही कर सकता है।

ऐसे ही बेशऊर उपदेशकों पर तंज करते हुए फिराक गोरखपुरी साहब ने कहा है कि –

सबमें कहाँ बातों के करीने।
लफ्ज हैं या लौ देते नगीने।
कौमों को गुमराह किया है,
शायर की बेराहरवी ने।

सलिका किसी में भी तभी आ सकता है, जब वो दूसरे के ग़म को ख़ुद महसूस कर सके। जब वो अपना ग़म भूलकर ज़माने के ग़म को दूर करने के बारे में सोच सके। वह आदमी जो अपने बारे में कम और दुनिया के बारे में ज्यादा सोचता है, उसे किसी उपदेशक की जरूरत नहीं है। वह आदमी जो दूसरे के ग़मों को बाँटना चाहता है, उनके ग़मों को दूर करना चाहता है। ऐसा ही व्यक्ति समाज में भाईचारा ला सकता है। ऐसे व्यक्ति ही कौमी एकता कायम कर सकते हैं। इसलिए उर्दु के मशहूर शायर जनाब निदा फाजली ने कहा है कि–

अपना ग़म ले के कहीं और न जाया जाए।
घर में बिखरी हुई चीजों को सजाया जाए।
घर से मस्जिद है बहुत दूर चलो यूँ कर लें,
किसी रोते हुए बच्चे को हँसाया जाए।

बातचीत के जरिए ही एक-दूसरे के करीब आया जा सकता है। बातचीत के जरिए ही दिल की बातें जानी जा सकती हैं। गलतफहमी की दीवारें, दहशत का माहौल बातचीत के जरिए ही दूर हो सकता है। लफ्जों में बड़ी ताकत होती है। लफ्ज ही दिल की दूरियाँ बढ़ाते हैं, दिल को मिलाते हैं। लफ्ज ही दो कौमों के बीच खाई बनाते हैं, खाई पाटते हैं। लफ्ज ही माहौल बनाते और बिगाड़ते हैं। कौमी एकता के लिए लफ्जों की सही ताकत का सही इस्तेमाल होना चाहिए। लफ्जों की ताकत का परिचय देते हुए निदा फाजली की एक कविता

इस समय बिलकुल सटीक है –

लफ्जों का पुल

मस्जिद का गुंबद सूना है
मंदिर की घंटी खामोश
जुजदानों में लिपटे सारे आदर्शों को
दीमक कब की चाट चुकी है
रंग गुलाबी
नीले
पीले
कहीं नहीं हैं
तुम उस जानिब
मैं इस जानिब
बीच में मीलों गहरा गार
लफ्जों का पुल टूट चुका है
तुम भी तन्हा
मैं भी तन्हा

माहौल बदलना कोई मामूली बात नहीं होती, लफ्जों के जरिए दिल में भरे ज़हर को ख़त्म करना, दिल के घावों को भरना कोई आसान काम नहीं होता है। शुरू-शुरू में तो लगता है कि ये लफ्जी ताकत शायद बेअसर है। लेकिन सच ये है कि इसका असर धीरे-धीरे मगर बड़ा कारगर साबित होता है। निदा फाजली के ये दो शेर देखिए–

मुमकिन है सफर हो आसाँ अब साथ भी चलकर देखें।
कुछ तुम भी बदलकर देखो कुछ हम भी बदलकर देखें।

दो चार कदम हर रस्ता पहले की तरह लगता है।
शायद कोई मंजर बदले कुछ दूर तो चलकर देखें।

लफ्जों में ही एकता की, संगठन की और नेतृत्व की शक्ति होती है। क्योंकी लफ्जों की अपनी कोई कौम नहीं होती। लफ्ज तो दिल से दिल को मिलाने का जरिया मात्र हैं। शब्द तो तटस्थ और स्थितप्रज्ञ रहकर यथार्थ दर्शन कराने का अद्‌भुत और महान कार्य करते हैं। शब्द किसी की बपौती नहीं हैं। अक्षरों के मेल से नये शब्द और नये शब्दों के मेल से नई भाषा का सृजन

होता रहता है। शब्दों की इसी निस्पृहता और स्थितप्रज्ञता पर फिराक गोरखपुरी की रचना बिलकुल सटीक बैठती है –

कौमी एकता

वह तवाइफ
कई मर्दों को पहचानती है
शायद इसीलिए
दुनिया को ज्यादा जानती है
उसके कमरे में
हर मजहब के भगवान की
एक-एक तस्वीर लटकी है
ये तस्वीरें
लीडरों की तकरीरों की तरह नुमाइशी नहीं
उसका दरवाजा
रात गये तक
हिन्दू
मुस्लिम
सिक्ख
ईसाई
हर जाति के आदमी के लिए खुला रहता है।
खुदा जाने
उसके कमरे की-सी कुसादगी
मस्जिद
और
मन्दिर के आँगनो में कब पैदा होगी।

• • •

पं० ब्रजनारायण चकबस्त के कलमी खाके

पं० ब्रजनारायण चकबस्त उर्दू शायरी में एक बड़ा नाम है। उर्दू शायरी या उर्दू साहित्य की स्तरीयता की समृद्धि में पं० चकबस्त का अद्‌भुत योगदान रहा है। इनके समय में उर्दू का बोलबाला था और उर्दू जबान अपनी बेमिसाल मिठाश के लिए भी जनमानस में अपना विशेष स्थान बनाने के साथ-साथ उस समय सम्पूर्ण राष्ट्र में भी साहित्य के लिए स्तरीय भाषा मानी जाती थी। हिन्दी में भी कई साहित्यकार अपनी कलम से श्रेष्ठतम साहित्य से भाषा की अभिवृद्धि कर रहे थे, लेकिन उर्दू की बात ही कुछ और थी। शायद यही कारण था कि पं० ब्रजनारायण चकबस्त ने अपनी शायरी के लिए, अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए साहित्य की भाषा के रूप में उर्दू को चुना। वैसे मेरे विचार से खालिस उर्दू और परिशुद्ध हिन्दी का कोई अस्तित्व आज के समय में नहीं है। उर्दू में से हिन्दी के शब्द और हिन्दी में से उर्दू के लफ्जों को निकाल दिया जाए तो भाषा आधी-अधूरी सी रह जाएगी और यह सिर्फ हिन्दी या उर्दू के साथ ही है ऐसा नहीं है। सच तो यह है कि यह स्थिति विश्व की तमाम भाषाओं के साथ है। दूसरी भाषाओं से आयातीत शब्दों को यदि निकाल दिया जाय तो वह भाषा पंगु हो जाएगी। आज के ग्लोबलाईजेशन के युग में यह सम्भव भी नहीं है।

हम जिसे विश्व की सबसे ज्यादा समृद्ध भाषा समझते हैं ऐसी अंग्रेजी भाषा में भी 35% प्रतिशत से भी ज्यादा शब्द दूसरी भाषा से लिये गये हैं। कोई भी भाषा तभी समृद्ध और कालजयी हो पाएगी जब उसमें अन्य भाषा के शब्दों को स्वीकार करने की शक्ति हो। हम यदि चाहते हैं कि हमारी भाषा समृद्ध हो, हमारी भाषा सिरमौर बन सके, हमारी भाषा मानव संस्कृति की विशेष पहचान बन सके तो हमें बड़ा मन बनाकर दूसरी भाषा के बहुप्रचलित शब्दों को आत्मसात करना ही होगा।

उर्दू भाषा ने और हिन्दी भाषा ने हमेशा से आमफहम और बहु प्रचलित शब्दों को स्वीकार करने में कभी भी, कहीं भी संकोच नहीं किया है, और यही कारण है कि इन दोनो भाषाओं में आज विश्व का श्रेष्ठतम साहित्य अपनी सम्पूर्ण सफलता के साथ संचित है, यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

इसी श्रेष्ठतम उर्दू भाषा के एक विशेष शिल्पी हैं पं० ब्रजनारायण चकबस्त। इन्हें बचपन से ही शायरी का बड़ा शौक था। उर्दू में इन्होंने लगभग सभी विधाओं पर अपनी कलम चलाई है। इनकी कलम बड़ी ही मंजी हुई थी। उमदा शायरी के लिए उर्दू के समकालीन शायरों में इनकी अच्छी धाक भी थी और उर्दू कविता के प्रेमी इनको बड़े चाव से सुनते थे।

उर्दू में शायरी करने का चकबस्त का अपना अलग ही अन्दाज था और इसलिए इन्होंने उर्दू शायरी में नई जान फूँक दी। पं० चकबस्त ने उर्दू शायरी को आशिक-माशुक के चोंचलों से निकालकर उसे देश भक्ति और कौमी एकता के तरानों से भर दिया। इनकी शायरी में जगह-जगह राष्ट्रीयता का रंग नज़र आने लगा। देश भक्ति और कौमी एकता के साथ-साथ इन्होंने प्रकृति के भी सुन्दर रंगों का वर्णन बड़े अनोखे और आकर्षक अन्दाज में किया है। अपने समय के बड़े कद के उर्दू शायर अनीस और दबीर के समकक्ष ही इन्होंने मरसिये भी लिखें हैं, जो बहुत ही प्रसिद्ध हुए हैं। पं० ब्रजनारायण चकबस्त की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता थी सरलता, सादगी और साफगोई। इतनी सरल और साफ जबान में बड़ी ही सादगी के साथ में मुहावरेदार भाषा का प्रयोग बड़ी ही कुशलता से किया करते थे, और भाषा की विशेषता है कि मुहावरेदार भाषा अपना तत्काल और गहरा प्रभाव डालती है। इसीलिए उर्दू साहित्य में ये अपनी विशेष पहचान बनाते हुए अपनी खास जगह बनाने में सफल रहे हैं। इसलिए इनके लिए निस्संदेह रूप से यह कहा जा सकता है कि ये बड़े देशभक्त, सज्जन, मिलनसार और सहृदयों के स्नेह भाजन थे।

पं० ब्रजनारायण चकबस्त से जुड़ी एक प्रसिद्ध घटना मुझे याद आ रही है। यह 3 सितम्बर 1911 की घटना है। 3 सितम्बर 1911 को हिन्दू विश्व विद्यालय की स्थापना के लिए चन्दा इकट्ठा करने के लिए एक सभा का आयोजन किया गया था। पं० मदनमोहन मालवियजी का यह एक बहुत बड़ा यज्ञ था, यह उनका सपना था कि हिन्दू विश्व विद्यालय की बड़े पैमाने पर स्थापना की जाए और इसीलिए चन्दा इकट्ठा करने के लिए इस सभा का आयोजन किया गया था। पं० मदनमोहन मालवीयजी के वक्तव्य से पहले पं० ब्रजनारायण चकबस्त ने एक मुसद्दस पढ़ी। चकबस्त के पढ़ने

का अपना ही अलग अन्दाज था उनके प्रभावशाली तरीके ने श्रोताओं पर जादू-सा काम किया। बयान की खूबी और गले की मिठाश के कारण वे तत्काल श्रोताओं को अपने काबू में कर लेते थे। चकबस्त की वो मुसद्दस सुनकर सभी श्रोता फड़क उठे। वहाँ उपस्थित सभी ने दिल खोल के चन्दा दिया और उम्मीद से बढ़कर वह सभा कामयाब हुई। उसी मुसद्दस से कुछ अंश मैं यहाँ बड़े ही सम्मान से प्रस्तुत कर रहा हूँ –

इलाही कौन फरिश्ते हैं ये गदाए–वतन ।
सफाए कल्ब से जिनके ये बज्म है रोशन ॥
झुकी हुई है सबों की लिहाज से गर्दन ।
हर एक जबाँ है ताजीम और अदब के सखुन ॥
सफें खड़ी हैं जवानों की और पीरों की ॥
ख़ुदा की शान यह फेरी है किन फकीरों की ॥

फकीर इल्म के हैं इनकी दास्ताँ सुन लो ।
पयाम कौम का दुख–दर्द का बयाँ सुनलो ॥
ये दिन वो दिन है जो है यादगार हाँ सुन लो ।
है आज गैरते कौमी का इम्तहाँ सुन लो ॥
यही है वक्त अमीरों की पेशवाई का ।
फकीर आये हैं कासा लिए गदाई का ॥

जो अपने वास्ते माँगे ये वो फकीर नहीं ।
तमअ में दौलते दुनिया की ये असीर नहीं ॥
अमीर दिल के हैं जाहिर में ये अमीर नहीं ।
वह आदमी नहीं जो इनका दस्तगीर नहीं ॥
तमाम दौलतें जाती लुटाके बैठे हैं ।
तुम्हारे वास्ते धूनी रमा के बैठे हैं ॥

सवाल इनका है तालीम का बने मन्दिर ।
कलश हो जिसका हिमाला से औज में बरतर ॥
गुनाह कौम के धुल जाएँ अब वह काम करो ।
मिटे कलंक का टीका वह फैज आम करो ॥
किफा को जहल को बस दूर से सलाम करो ।
कुछ अपनी कौम के बच्चों का इन्तजाम करो ॥

ये काम हो के रहे चाहे जाँ रहे न रहे ।
ज़मीं रहे न रहे आसमाँ रहे न रहे ॥
ये कारे–खैर में कोशिश यह कौम का दरबार ।
लगा दो आज तो चाँदी के हर तरफ अम्बार ॥
ये सब कहें कि है जिन्दा ये कौम गैरतदार ।
है इसके दिल में बुजुर्गों की आबरू का वकार ॥
तमाम उम्र कटी एक ही करीने पर ।
गिराया अपना लहू कौम के पसीने पर ॥
इसी के हाथ में है कौम का सँवर जाना ।
तुम्हारी डूबती कश्ती का फिर उभर जाना ॥
जो तुमने अब भी न दुनिया में काम कर जाना ।
तो यह समझ लो कि बेहतर है इससे मर जाना ॥
यह आबरू तो हजारों बरस में पाई है ।
न यों लुटाओं कि ऋषियों की यह कमाई है ॥
लुटाओ नाम पै दौलत अगर हो गैरतदार ।
पुकार उठे ये ज़माना कि है यह पर उपकार ॥
है जोर हिम्मते मर्दाना कौम को दरकार ।
वरक उलट दो जमाने का मिल के सब इक बार ॥
ज़रा हमैयतो गैरत का हक़ अदा कर लो ।
फकीर कौम के आए हैं झोलियाँ भर दो ॥
यहाँ से जाएँ तो जाएँ यह झोलियाँ भर दो ।
लुटाएँ इल्म की दौलत तुम्हारे बच्चों पर ॥
इधर तो नाज यह तुमको कि ख़ुश गए ये बशर ।
जो हो सका वह किया नज्र इनके टेक के सर ॥
यही हो फख्र जवानों का और पीरों का ।
सवाल रद न किया कौम के फकीरों का ॥

इसी तरह की फड़कती हुई मुसद्दस के लिए पं० चकबस्त प्रसिद्ध थे। कौमी मुसद्दस का एक और नज़ारा देखिए। इनकी एक कौमी मुसद्दस 'मुरक्कए इबरत' नाम से प्रसिद्ध है। इस नज्म में नौ हिस्सों में 61 बन्द हैं एक बन्द देखिए –

है कौम पे छाया हुआ ये अब्रे नहुसत ।
नज़ारों से है पिन्हा रुखे खुर्शिदे सआदत ।।
मैदाने तरक्की से कदम करते हैं रजअत ।
साये की तरह साथ हैं अदबार की सूरत ।।
वो बारे अलम है कि उठाया नहीं जाता ।
बीगड़ा है वो नक्शा की बनाया नहीं जाता ।।

वे लोग जो दिशा निर्देश किया करते थे, भटकों को राह बताया करते थे, आज वे ही भटक गये हैं। न वे जानते हैं कुछ की वे कहाँ हैं और न कुछ कौम को खयाल है कि वे कहाँ जा रहे हैं। देखिए ये बन्द –

पैरों में नहीं रोशनिये चश्मे बसीरत ।
उनका है जवानों में जवामर्दी औ' हिम्मत ।।
गुमराह हुए जाते हैं खुद ख़िज्र ए तरिकत ।
हर सफे पर दिल के मिटा हर्फे मुहब्बत ।।
बाकी है कहाँ नामों निशां मेहरो वफ़ा का ।
कुछ रंग ही बदला नज़र आता है हवा का ।।

चारों ओर जिस तरह से दहशत फैली है। उसे देखते हुए चकबस्तजी का उपयुक्त बन्द बिलकुल सटीक बैठता है। इसी पर मुझे अपनी ग़ज़ल की ये चार पंक्तियाँ याद आ रही हैं –

आजकल अब तो कुछ सूझता ही नहीं ।
हम कहाँ हैं हमें ये पता ही नहीं ।।
छल, कपट, स्वार्थ के घोर जंगल में अब ।
प्यार का तो कोई रास्ता ही नहीं ।।

धन को प्रधानता सिर्फ आज का मनुष्य नहीं दे रहा है बल्कि यह रिवायत तो बहुत पुरानी है, और इस पर काफी चर्चाएँ भी हुई हैं। दौलत को प्रधानता दी जाए इसे हमारी संस्कृति में खराब माना गया है। धन– सम्पत्ति से कहीं ज्यादा अहम चीज है प्यार–मुहब्बत, नेक–नीयत,सहानुभूति, एक दूसरे के प्रति वफ़ादार रहना। लेकिन समय के साथ-साथ ये उच्च और श्रेष्ठ मानवीय मूल्य बदलते चले और आज वही निम्न स्तर के मूल्य मानव की, आदमी की पहचान बन बैठे हैं। इसी पर तंज करते हुए पं० चकबस्त कहते हैं –

कहते थे बुरा जर को सुखन संज पुराने ।
उन लोगों के हमराह गये उनके ज़माने ॥
वे फलसफ-ए-इल्मों अदब अब हैं फसाने ।
बदला है नया रंग ज़माने की हवा ने ॥
दौलत से है अब जीनते कासान-ए-तहजीब ।
कहते हैं इसे शम्म-ए-जिलो खान-ए-तहजीब ।

समाज में जब नए मूल्य अपना घर कर लेते हैं तो पुरानी परम्पराएँ टूटकर बिखरने लगती हैं। लेकिन जो मूलभूत और साम्प्रदायिक आधार परम्पराएँ हैं उनका टूटना विनाश को आमंत्रण देना होता है। विश्व के प्रत्येक धर्म में, प्रत्येक सम्प्रदाय में प्यार–मुहब्बत को सर्वोपरि रखा है। लोगों के बीच यदि धर्म और सम्प्रदाय को लेकर झगड़े–फसाद होते हैं, तो यह मान लेना चाहिए की अब विनाश नजदीक है। ऐसी स्थिति पर चिन्ता प्रकट करते हुए पं० चकबस्तजी कहते हैं –

बाजिब नहीं मजहब के मसाइल में भी हुज्जत ।
बाजीच-ए-अतफाल हैं हफ्ताद औ दो मिल्लत ॥
बस काबिले तसलीम उसी की है शरियत ।
जिस दिल में हो इंसा के लिए दर्दो मुहब्बत ॥
तहजीबे पसंदीदए आफाक यही है ।
मजहब यही, मिल्लत यही, अखलाक यही है ॥

शब्दों का सही और सटीक प्रयोग करने में चकबस्त को गजब की महारथ हासिल थी। वे शब्दों का प्रयोग इस अन्दाज में करते थे कि श्रोता पर उसका पूरा प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता था।

हिन्दू संस्कृति की यह मान्यता है कि इन्सान का शरीर पाँच तत्त्वों के अंश से मिलकर बनता है, और अन्तत: ये अंश अपने तत्त्वों में विलीन हो जाते हैं। ज़िन्दगी और मौत की यह फिलॉसफी चकबस्त ने सिर्फ दो पंक्तियों में, एक शेर में बखूबी प्रस्तुत की है। वो शेर देखिए –

ज़िन्दगी क्या है ? अनासिर में जदूरे तरतीब ।
मौत क्या है ? इन्हीं इज्जा का परेशां होना ॥

धर्म, आस्था, श्रद्धा और पूजा पाठ के नाम पर होने वाले ढोंग और

दिखावे के प्रति भी चकबस्त ने अपनी नाराजगी इस तरह व्यक्त की है, वे कहते हैं –

बलाएँ जाँ हैं यह तस्बीह और जुन्नार के फन्दे ।
दिले हकबी को हम इस क़ैद से आज़ाद करते हैं ॥
जनाबे शेख को यह मश्क है यादे इलाही की ।
खबर होती नहीं दिल को जबाँ से याद करते हैं ॥

इसी पर मुझे एक बेहद प्रसिद्ध दोहा याद आ रहा है –

माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख मांही ।
मनवा तो दहुँ दिसी फिरे, यह तो सुमिरन नाहि ॥

पं० ब्रजनारायण चकबस्त का यह स्पष्ट मानना था कि दिखावे से हम सफलता के सर्वोच्च श्रेष्ठतम शिखर तक नहीं पहुँच सकते हैं। एकता के विशेष गुण के लिए वे ताउम्र उसके पक्षधर रहे। कौमी एकता का उनसे बड़ा पक्षधर मिलना मुश्किल ही है। उनका यह शेर बहुत कुछ कह जाता है –

कौम की शीराजा बन्दी का गिला बेकार है ।
तर्जे हिन्दू देखकर रंगे मुसलमाँ देखकर ॥

आज के ज़माने में लोग अपने मान–सम्मान के लिए अपने नाम के लिए न जाने कैसे-कैसे कर्मों से ता-उम्र बन्धे रहते हैं। कई दफा तो लोग सिर्फ अपनी शान की खातीर सारी इन्सानियत को ताक पर रख देते हैं। इस दुनिया में कोई भी अमर नहीं हुआ है और न होगा इसके बावजूद अपनी झूठी शान और दिखावे के लिए लोग आदमीयत भूल कर वो काम कर बैठते हैं जो उन्हें नहीं करना चाहिए। ऐसी झूठी शानौ शोकत से कोई लाभ नहीं होनेवाले। चकबस्त का ये शेर बड़ा ही खूबसूरत है, वे कहते हैं –

बादे फना फिजूल है नामो निशाँ की फिक्र ।
जब हम नहीं रहे तो रहेगा मजार क्या ॥

चकबस्त की कलम से ऐसे सैकड़ों शेर निकले हैं, जो आज के आम आदमी की ज़िन्दगी के एक-एक रंग को उजागर करते चलते हैं।

आज का युग अर्थ प्रधान युग है। आज के दौर में अगर अर्थ नहीं है तो सब कुछ निरर्थक हो जाता है, व्यर्थ हो जाता है। लेकिन लोभ,लालच

और हवस ने अपनी सीमाएँ लाँघ दी हैं। इस पर चकबस्तजी कहते हैं –

एक सिलसिला हवस का है इंसाँ की ज़िन्दगी ।
इस एक मुश्त ख़ाक को गम दो जहाँ के हैं ॥

लोगों की यह फितरत रही है कि चीज की हम तब तक कद्र नहीं करते हैं जब तक हमारे पास है लेकिन जब वह वस्तु हमारे पास नहीं रहती तब हम उसकी अच्छाइयों को याद कर दुखी होते रहते हैं। यही बात बड़ी सादगी और सफाई से चकबस्त ने इस शेर में कही है –

दोस्त मरने पे मेरे दादे-वफ़ा देते हैं ।
हाय किस वक्त मुहब्बत का सिला देते हैं ॥

लोगों की यह फितरत और भी खतरनाक तब हो जाती है, जब वह गुटों में बँटने लगती है। किसी की कद्र ना करना और कद्र करने के लिए भी उसके गुणों से पहले उसके धर्म, जाति आदि को परखना यह तो और भी बुरा है। चकबस्त ने इस पर बड़ा ही करारा व्यंग्य किया है कि –

जमाने में नहीं अहले – हुनर का कद्रदाँ बाकी ।
नहीं तो सैकड़ों मोती हैं इस दरिया के दामन में ॥

यहाँ तसबीह का हल्का वहाँ जुन्नार का फन्दा ।
असीरी लाजमी है मजहबे शेखो बिरहमन में ॥

पं० ब्रजनारायण की शायरी में ज़माने भर के तमाम रंग अपनी सुन्दरता के साथ यहाँ-वहाँ बिखरे पड़े हैं। उनका मूल स्वर देश-प्रेम का, राष्ट्र-प्रेम का या कौमी एकता का भले ही रहा हो, लेकिन दूसरे रंगों से वे अछूते नहीं रहे हैं। हर एक रंग के शेर को बड़ी ही सरलता, सादगी और सफाई से प्रभावशाली ढंग से कहने में वे अद्वितीय थे। कुछ शेर देखिए–

जिसे है फिक्र मरहम की उसे क़ातिल समझते हैं ।
इलाही खैर हो यह जख़्म अच्छा हो नहीं सकता ॥

कमाले बुजदिली है पस्त होना अपनी आँखों में ।
अगर थोड़ी-सी हिम्मत हो तो फिर क्या हो नहीं सकता ॥

उभरने ही नहीं देती यहाँ बे-मायगी दिल की ।
नहीं तो कौन कतरा है जो दरिया हो नहीं सकता ॥

दुख को प्रकट न कर पाने की मजबूरी की खूबसूरती देखिए –

ये वो ग़म है कि जिसकी परवरिश दिल ख़ूब करता है ।
जबाँ तक ला नहीं सकता हूँ शिकवे बेवफ़ाई के ।।

बड़े ही सीधे-सादे शब्दों में और कुछ खूबसूरत शेर देखिए –

रंजो-राहत का सबब दुनिया में कुछ पाया नहीं ।
हश्र में हम साफ कह देंगे ख़ुदा के सामने ।।

गुनहगारों में शामिल हैं गुनाहों से नहीं वाक़िफ ।
सजा को जानते हैं हम ख़ुदा जाने ख़ता क्या है ।।
यों न इन्सान का बरगश्ता मुकद्दर हो जाए ।
मैं अगर फूल उठा लूँ तो वह पत्थर हो जाए ।।
इस जमीं पे जिनका था दबदबा कि बुलन्द अर्श पे नाम था ।
उन्हें यों फलक ने मिटा दिया कि मजार तक का निशाँ नहीं ।।

इन सबके बावजूद यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा की पं० ब्रजनारायण चकबस्त ताउम्र, ज़िन्दगी भर कौम के लिए ही जीते – मरते रहे और यह बात उनके अपने एक शेर में भी इस तरह जाहिर हुई है –

कौम का ग़म लेकर दिल का यह आलम हुआ ।
याद भी आती नहीं अपनी परेशानी मुझे ।।

पं० ब्रजनारायण ने उर्दू साहित्य में अपना अप्रतीम योगदान दिया है। उर्दू की लगभग सभी काव्य विधाओं में उन्होंने साधिकार पूर्ण सफलता से कलम चलाई है, और इसी तरह उन्हें शोहरत भी प्राप्त हुई है ।

उर्दू की तरह उन्हें संस्कृत और अवधी भाषा का भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त था। इसी ज्ञान के आधार पर उन्होंने उर्दू साहित्य को बहुमूल्य अद्वितीय सौगात दी है और वह सौगात है 'रामचरितमानस' का उर्दू में अनुवाद। यह बड़ा ही दूरूह कार्य है। किसी भी भाषा के काव्य का अन्य दूसरी भाषा में काव्यानुवाद करना अपने आप में किसी चुनौती से कम नहीं है। ऐसा काम वही कर सकता है जिसे दोनों भाषाओं का सम्पूर्ण ज्ञान हो और साथ ही उस विद्या, उस छन्द की पूर्णत: जानकारी हो और पं० ब्रजनारायण चकबस्त इसमें पूर्णत: निपुण थे। ऐसा महान और अद्‌भुत कार्य करना हर किसी के वश का नहीं होता। 'रामायण' के उर्दू में अनुवाद के लिए उन्हें हमेशा ही बड़े आदर और सम्मान से याद किया

जाता रहेगा।

इस दुनिया की यह परम्परा रही है कि मरने के बाद उसे विशेष सम्मान से सम्मानित किया जाता है। आदमी जब तक जिन्दा है तब तक शायद उसे वह शोहरत न मिले जो उसे मिलनी चाहिए। लेकिन मृत्योपरांत ज़माना उसे बहुत याद करता है। इस भाव को पं० ब्रजनाराण चकबस्त के ही शेर से प्रकट करते हुए मैं अपना यह लेख यहाँ समाप्त करता हूँ। उनका शेर देखिए –

बागबाँ ने यह अनोखा सितम ईजाद किया ।
आशियाँ फूँक के पानी को बहुत याद किया ।।
इनको ना कद्र-ए-आलम का सिला कहते हैं ।
मर चुके हम तो ज़माने ने बहुत याद किया ।।

●●●

वली गुजराती : फ़न और शख़्सियत

वली मोहम्मद या वली गुजराती अपने आप में बहुत ऊँची शख़्सियत हैं। इन पर अभी तक बहुत कुछ लिखा जा चुका है और बहुत कुछ कहा जा चुका है। यहाँ यह कहना अतिशयोक्ति न होगा की इन पर कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाने के बराबर है। इन सबके बावजूद वली गुजराती की शख़्सियत उनका फ़न अपने-आप में रत्नाकर है। जितनी बार इसे खंगालो उतनी ही बार इसमें से रत्न हाथ लगेंगे। जितनी बार इसकी गहराई में उतरो उतनी ही बार एक अद्‌भुत आनन्द की अनुभूति होती है।

वली गुजराती का जन्म 1650 के बाद 17 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में माना जाता है। कोई विशेष और ठोस प्रमाण न होने के कारण इनके जन्म के समय पर विद्वानों में मतांतर है। लेकिन अधिकांश विद्वान इस मत से संमत है कि इनका जन्म 1650 के बाद 17 वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होगा। इनकी मृत्यु के समय पर भी विद्वानों में मतभेद है कुछ विद्वान वली गुजराती के ही एक कता के आधार पर इनकी मृत्यु का समय 1707 मानते हैं, लेकिन औरंगाबाद वाले इनकी मृत्यु 1736 में मानते हैं। अहमदाबाद और औरंगाबाद दोनों ही जगहों पर इनके मजार हैं और इन दोनों ही जगहों पर इनकी याद में बेहतरीन कार्यक्रम भी होते रहते हैं।

इनके जन्म और मृत्यु पर तो विवाद है ही साथ ही साथ इस पर भी विद्वानों में मतभेद है कि वे मूलतः कहाँ के थे। डॉ. जहीरूद्दीन मदनी ने अपने संशोधन के आधार पर यह प्रमाणित किया कि वली गुजराती मूलतः गुजरात के ही थे। अख्तर जुनागढ़ी और वारिस अलवी के पिता श्री ने भी यह प्रमाणित किया की वली गुजराती अलवी खानदान के फरजन्द थे। इन विद्वानों के अलावा लगभग सभी विद्वानों का इस विषय पर एक मत है कि वली गुजराती दक्कनी थे।

इनकी शायरी की भाषा को दक्कन की भाषा यानी दक्कनी कहा गया, लेकिन वास्तव में वे हिन्दी में ही लिखा करते थे। दक्कनी भाषा अपने आप में एक पूर्ण भाषा नहीं है। कई भाषाओं के शब्दों को मिलाकर ही दक्कनी भाषा का अस्तित्व बनता है। और ऐसा सिर्फ दक्कनी के साथ नहीं है, बल्कि

विश्व की तमाम भाषाओं के साथ है । हिन्दी, गुजराती, उर्दू, अंग्रेजी इन सभी भाषाओं में एक दूसरे की भाषा के शब्द प्रचूर मात्रा में हैं । दूसरी भाषा के शब्दों को यदि निकाल दिया जाए तो वह भाषा इतनी क्लिष्ट हो जाएगी की उसका व्यावहारिक उपयोग बिलकुल कठिन हो जाएगा। दक्कनी भाषा में भी गुजराती, संस्कृत, मराठी और कन्नड भाषा के शब्द प्रचूर मात्रा में हैं । भाषा या बोली चाहे जो भी हो शब्द चाहे जहाँ से लिये गये हों उसकी सार्थकता तब है जब वह अपनी पूर्ण प्रभावकता से सम्प्रेषित होता हो, अन्यथा वह निरर्थक है। वली गुजराती की शायरी की यह सबसे बडी विशेषता है कि इनकी शायरी में शब्द प्रयुक्त किस भाषा का है इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण यह हो जाता है कि वह कितना सार गर्भित है। सच पूछिये तो शायरी की, कविता की महत्ता भी इसी में है और इस फ़न में, इस गुणवत्ता में वली गुजराती अपना सानी नहीं रखते ।

वली गुजराती की शायरी में पूर्ण रूप से हिन्दुस्तानी प्रभाव उभर कर सामने आया है, और हिन्दुस्तानी प्रभाव यानि 'वसुधैवकुटुम्बकम्' सर्वधर्म समभाव, मानवता, सहिष्णुता, समन्वयता और बिलकुल संक्षिप्त में कहना हो तो सिर्फ ढाई अक्षर में कह सकते हैं 'प्रेम या प्यार', इनकी शायरी का मूल मंत्र ही प्रेम है। वैसे तो प्रेम से ही शायरी या कविता का बीजारोपण होता है । इसी से हृदय में रागात्मकता उत्पन्न होती है । जिसके हृदय में रागात्मकता न हो वह तन-मन से शायरी से कोसों दूर हो जाता है। इनकी शायरी में गजब की गीतात्मकता गजब की लयात्मकता है । प्रेम यदि गीतात्मकता के साथ आया हो, प्यार की अभिव्यक्ति यदि लयात्मकता से हुई हो और शब्द अपनी पूर्ण सार्थकता, प्रभावकता के साथ उभर कर सामने आया हो तो उस शायरी को आसमान की बुलंदी को छूने से कोई नहीं रोक सकता। इसी तरह की बेमिशाल शायरी करने में वली गुजराती का नाम सर्वोपरी है। इसी तरह की प्रेम की अभिव्यक्ति से सराबोर एक शेर देखिए –

कूच-ए-यार एन काशी है।
जोगिये दिल वहाँ का बासी है ॥

इस शेर में वली गुजराती ने मेहबूब की मोहब्बत को सूफियाना अन्दाज

में गजब की महारथ से प्रस्तुत किया है। इस शेर में प्रेम की बुलन्दी देखिए जो आसमान से भी ऊँची नज़र आती है। प्यार मोहब्बत में ऐसा ही सूफी मत, ऐसा ही फक्कड़पन कबीर के साहित्य में उनके दोहों में दिखाई पड़ता है। इनके प्रेम में लौकिकता नहीं है बल्कि पारलौकिकता है। इनका प्रेम भौतिकवादी नहीं है। इनके प्रेम में अश्लिलता, छिछोरापन या फूहड़ता नहीं है, बल्कि इनके प्रेम में सात्विकता, सादगी, सरलता और पूर्ण समर्पण भाव है। प्रेम और फक्कडपन का सम्मिलन, प्यार, मुहब्बत और सुफियाना मत का समन्वय कर शायरी में पूर्ण प्रभावकता से उभारने में वली गुजराती सबसे आगे हैं। इसी के साथ इन्होंने मिथकों का प्रयोग भी किया। प्रतीक के रूप में मिथक का प्रयोग करके शेर कहने में ये सिद्धहस्त हैं। ऐसा ही एक शेर देखिए जो इनके सबसे प्रसिद्ध शेरों में से एक है –

जोधा जगत के क्यों न डरें, तुझ सू ए सनम।
तरकश में तुझ नयन के हैं, अर्जुन के बाण आज ॥

अपने मेहबूब का अपने प्रियतम का नख-शिख वर्णन करने में भी ये किसी से पीछे नहीं हैं। खुशबू से लकदक बदन और चाँद से सुन्दर गोरे चेहरे पर झूलती जुल्फों का चित्रण इस शेर में जिस आकर्षण के साथ प्रस्तुत हुआ है। जितना सुन्दर दृश्य इसमें उभरकर सामने आया है वैसा अन्यत्र शायद दुर्लभ ही होगा। शेर देखिए –

तेरी जुल्फों के हल्के में अहे यूँ नक्शे रुखे रोशन।
कि जैसे हिन्द के भीतर लगें दिवे दिवाली के ॥

प्रतीक के रूप में सिर्फ मिथक का ही प्रयोग नहीं किया है, बल्कि मिथक के साथ - साथ सबको सम्मोहित करनेवाली बाँसुरी की धुन को भी इन्होंने अपने कई शेरों में उभारा है। ऐसा ही एक शेर देखिए -

छुपा हूँ मैं सदा-ए-बांसली में।
कि ता जाऊँ परिरु की गली में ॥

भाषा और शब्दों के प्रयोग के मामले में इन्हें वाकई महारथ हासिल थी। कबीर के लिए ऐसा कहा जाता है कि वे भाषा के डिक्टेक्टर थे, तो वली के लिए यह कहना अनुचित नहीं होगा कि भाषा उनकी वह प्रियतमा, वह सखी थी जो पूर्ण रूपेण उन्हे समर्पित थी। वली की यह एक सबसे

बड़ी विशेषता है कि वे मिथकों को या प्रतीक और बिम्ब को बड़ी ही सहजता और सादगी से अपनी शायरी में पिरो लिया करते थे, और इसी से उनके शेरों में गजब की चमत्कृति आ जाती है ।

वली गुजराती के समय में शायर, कवि ज्यादातर राज्याश्रित हुआ करते थे । राजा या जागीरदार का आश्रय पाकर उन्हीं की छत्रछाया में रहकर साहित्य साधना करना । लेकिन इस स्थिति में अधिकांश साहित्य अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में ही रचा जाता था । जिससे वह साहित्य समाज के कट जाता था । लेकिन वली गुजराती ने किसी भी राजा या जागीरदार का आश्रय नहीं लिया और यही वजह है कि उनकी शायरी दरबारी शायरी न होकर आम जनता की शायरी हुई । इसीलिए वे याद भी रहे । दरबारी शायरों की शायरी में वह बात नहीं पाई जाती जो आम जनता के शायरों की शायरी में होती है ।

वली साहब के इन शेरों के साथ मैं समापन कर रहा हूँ -

- गंगा रवां किया हूँ अपस के नयन सती ।
  आए सनम शताब है रोजे नहान आज ॥
- तेरी भवाँ को देख के कहते हैं आशिका ।
  है शाह जिसके नाम चढ़ि यूँ कमान आज ॥
- तेरी तरफ अंखियाँ कहाँ ताब की देखें ।
  सूरज सूँ ज्यादा तेरे जामें की भड़क है ॥

• • •

वैश्विक अस्मिता : अहमदाबाद

भारत के लिए और भारत के तमाम नागरिकों के लिए यह बड़े गौरव और सम्मान की बात है कि हमारे राष्ट्र के एक शहर को वैश्विक विरासत का सम्मान प्राप्त हुआ है। यकीनन यह हम सभी के लिए बड़े सौभाग्य की बात है। वैश्विक फलक पर अपनी गौरवपूर्ण, सम्मानपूर्ण पहचान प्रस्थापित करना वास्तव में बड़े ही सौभाग्य की बात है। पूरे भारत वर्ष में अहमदाबाद शहर ही एक मात्र ऐसा शहर है जिसे सम्पूर्ण विश्व में वैश्विक विरासत के शहर का सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। अभी तक यह सम्मान फ्रान्स के पेरिस, ईजिप्त के केरो, अमेरिका के एडिनबर्ग, नेपाल के भक्तपुर और श्रीलंका के गाल्ले शहर को ही प्राप्त हो सका है। विश्व की इस महान सम्मान पूर्ण श्रेणी में अब भारत के अहमदाबाद शहर का नाम भी सम्मिलित हो गया है। अहमदाबाद को यह वैश्विक सम्मान यूँ ही मुफ्त में नहीं मिल गया है। इसके लिए इस शहर के नागरिकों की वर्षों की मानवता की तपस्या का परिणाम ही कारणभूत है। शहर के लोगों का विरासत के प्रति प्रेम और लगाव, मृदुभाषी और मिलनसार स्वभाव, सहज, सरल और सादगीपूर्ण जीवन शैली, किसी को भी अपना बना लेने की बेमिशाल कला, जरुरतमंदों को मदद और सहायता करने की अद्‌भुत क्षमता, सहनशीलता का अद्वितीय उदाहरण और समस्याओं को अपने ढंग से सुलझा लेने की अद्‌भुत और अद्वितीय दक्षता के साथ-साथ मितव्ययी होना इनकी विशेषता है। मितव्ययी होना और कंजूस होना दोनों में अन्तर है। अहमदाबादी-मितव्ययी है कंजूस बिलकुल भी नहीं है। आवश्यकता ना हो तो एक रूपया भी खर्च नहीं करेगा लेकिन यदि आवश्यकता हो तो हजारों रूपये पानी की तरह बहा सकता है, यही अहमदाबादी की विशिष्ट विशेषता है।

यूनेस्को (यूनाइटेड नेशन्स एज्युकेशनल, साइन्टिफिक एण्ड कल्चरल ओर्गेनाइजेशन) की वर्ल्ड हेरिटेज कमिटि की एक मिटिंग पोलेण्ड के क्राक्बो में 8 जुलाई 2017, शनिवार को आयोजित हुई। इस समिति की मिटिंग में अहमदाबाद से संबंधित तमाम पहलुओं की चर्चा-परिचर्चा, संवाद-परिसंवाद के अंत में सारांश निकालते हुए यह निर्णय किया गया और तुरंत ही इसकी घोषणा भी कर दी गई। भारत के गुजरात राज्य के अहमदाबाद शहर को

8 जुलाई सन् 2017 को वर्ल्ड हेरिटेज शहर घोषित किया गया। युनेस्को ने इससे पहले भारत की कई एतिहासिक इमारतों को वर्ल्ड हेरिटेज साइट घोषित किया है, लेकिन यह पहला मौका है, जब भारत के किसी शहर को विश्व विरासत घोषित किया हो। विश्व विरासत घोषित करने में तुर्क, लेबनान, ट्युनिशिया, पेरू, कजाकिस्तान, पुर्तगाल, जमैका, विएतनाम, तंजानिया, फिनलैंड, अजरबैयान, जिम्बाम्बे, क्रोशिया, अगोलम, क्यूबा, दक्षिण कोरिया और पौलेण्ड जैसे 20 (बीस) देशों ने अहमदाबाद के चुनाव का समर्थन किया था। अहमदाबाद शहर को हिन्दु, इस्लामिक और जैन धर्मों के लोगों के एक साथ बसने, यहाँ के बेहतरीन आर्किटेक्चर की वजह से चुना गया है।

यूनेस्को ने अपने नोट में लिखा है कि "15 वीं सदी में सुल्तान अहमदशाह द्वारा बसाया गया अहमदाबाद साबरमती नदी के पूर्वी तट पर बसा है। इस शहर में आर्कीटेक्ट के बेहतरीन उदाहरण हैं। उदाहरण के लिए भद्र का किल्ला, किले की दीवारों और उनके भव्य, अद्‌भुत और विशाल दरवाजे। यहाँ पर कई मस्जिदों और मकबरों का निर्माण हुआ है। इसके बाद के समय में बने कई हिन्दू और जैन मंदिर भी यहाँ हैं।"

5.5 किलोमीटर के क्षेत्रफल में फैले विस्तृत किले (कोट) में स्थित 600 पोलों में बसनेवाले लगभग चार लाख व्यक्तियों के सदियों पुराने लकडी के घरों में रहने के कारण अहमदाबाद को यह गौरव प्राप्त हुआ है। 'पोल' अहमदाबाद शहर की अपनी विशिष्ट पहचान है। प्रत्येक पोल में लकड़ी के घर बने हुए हैं, और वह भी दो - से तीन मंजिला। मूल अहमदाबाद शहर जो की कोट क्षेत्र के भीतर है। इसमें इस तरह की लगभग 600 पोलें हैं। प्रत्येक पोल का अपना नाम है। इन पोलों में रहनेवाले लोगों ने अहमदाबाद की स्थापना के समय के निर्माण कार्य को ज्यों का त्यों संभाल रखा, उसकी संरक्षा और देखभाल की। अहमदाबाद की स्थापना से आज इस शहर को 608 वर्ष हो गये हैं। इतने लम्बे अर्से तक लकड़ी के मकानों को संभाल रखना उसकी संरक्षा करना, उसे ज्यों का त्यों बनाए रखना यह बड़े ही धैर्य और तपस्या, कारीगरी और बुद्धिमता के परिचायक हैं। इसके साथ ही दूसरा और बड़ा कारण यह भी है कि इस शहर में स्थित 2600 हेरिटेज साइट्स अर्थात् सांस्कृतिक विरासत बनाये रखनेवाले निर्माण कार्य और 24 पुरातत्त्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान भी हैं। इन्ही सब कारणों से

इ.स. 2011 में अहमदाबाद शहर का नाम हेरिटेज सिटी में होना चाहिए ऐसी सिफारिश की गई थी । इसी सिफारिश और इसकी जोरदार प्रस्तुती के कारण छ: वर्षों के अध्ययन और अभ्यास तथा शोध के आधार पर इसे विश्व सांस्कृतिक विरासत शहर घोषित किया गया है ।

यूरोप और अमेरिका के निपुण विशेषज्ञों ने अहमदाबाद को उसकी विराटता और विशेषता के साथ सम्पूर्ण विश्व के सम्मुख प्रकाशित कर दिया है । विश्व के तमाम नागरिकों में अब इस शहर को पुन: देखने की उत्सुकता है । इससे पहले कई विदेशी पर्यटक यहाँ आए होंगे किन्तु तब उनकी दृष्टि में अहमदाबाद का उतना महत्त्व नहीं था, जितना आज है । इसलिए वे पुन: इस शहर को अब नये सिरे से देखना चाहते होंगे । यहाँ की संस्कृति और विशिष्ट एतिहासिकता तथा प्राचिन भव्य विरासत को देखने की उत्सुकता और कुतुहल के कारण अहमदाबाद अब वैश्विक नक्शे में प्रवासन के लिए सबसे अधिक लोकप्रिय और होटस्पोट बन गया है । इसलिए ऐसे में अब इस शहर के नागरिकों का यह विशेष दायित्व बन जाता है कि वे विशिष्ट एतिहासिक सुन्दरता लिए हुए वैविध्यपूर्ण पोलों, और उनका रहन-सहन, इस शहर में प्रवर्तमान स्वयं भू सुरक्षा और सलामती का माहौल और मेहमाननवाजी की अपनी विशेषता का परिचय करवाएँ । सम्पूर्ण विश्व को अहमदाबादी अस्मिता के दर्शन करवाने का यही सबसे सही मौका है ।

शब्द चित्र में वह आनन्द नहीं मिल पाएगा जो सम्मुख देखने और महसूस करने से प्राप्त होगा । फिर भी मै प्रयत्न कर रहा हूँ कि आपके कुतुहल और उत्सुकता को और अधिक बढा सकूँ, जाग्रत कर सकूँ । स्थानाभाव के कारण अत्यन्त संक्षेप में ही अहमदाबाद शहर इसकी भव्य, अद्‌भुत और अद्वितीय एतिहासिकता का परिचय करवा रहा हूँ ।

आइये सबसे प्रथम स्वयं अहमदाबाद का ही परिचय करवाता हूँ । इस शहर की स्थापना लगभग इ.स. 1411 में सुलतान अहमदशाह ने की यह सर्व सम्मत मान्यता है, और एतिहासिक तथ्य है । लेकिन यह विचार सोचने पर मजबूर कर देता है, कि नितान्त जंगल में नगर बसाने का विचार एक बादशाह के मन में क्यों आया ? इस जंगल में नगर बसाने के पीछे एक बड़ी

ही प्रसिद्ध दन्तकथा है, कि जब सुलतान अहमदशाह अपनी यात्रा के दौरान साबरमती नदी के किनारे रुके तो उन्होंने एक बड़ा ही अद्भुत और आश्चर्यचकित कर देनेवाला कुतुहलपूर्ण दृश्य देखा। उन्होंने देखा की एक खरगोश एक विशालकाय जंगली शिकारी कुत्ते को खदेड़ रहा है। क्रोधाग्निपूर्ण नेत्रों से देखता हुआ उस पर गुर्रा रहा है, उस पर झपट रहा है। खरगोश का अद्भुत आत्मविश्वास, उसकी निडरता और निर्भिकता से सुलतान बेहद प्रभावित हुआ। उसने सोचा कि यहाँ के पानी की तासीर, उसका प्रभाव बेहद असरदार है। यहाँ की आबोहवा में अजीब-सी निर्भिकता और आत्मविश्वास है। यह भूमि यकिनन अत्यन्त प्रभावशाली है। यही सब सोचकर अहमदशाह ने साबरमती नदी के पूर्वी तट पर नगर की स्थापना की, और धीरे-धीरे इस नगर में एतिहासिक इमारतों और स्मारकों का निर्माण कार्य होता रहा और इसकी एतिहासिक भव्यता और अद्वितीयता में बढोत्तरी होती रही, चार चाँद लगते रहे। नगर की सर्पाकार गलियों में आध्यात्मिकता और भौतिकता का बड़ा ही मनमोहक सामंजस्य है। इन्हीं गलियों और पोलों में प्राचीन और समकालिन, शांतिपूर्ण कलात्मक और अत्याधुनिक कलात्मक प्रतीकों, सांस्कृतिक परम्पराओं की श्रृंखलाओं का व्यवस्थापन उनकी देखभाल और उन्हें निभाना तथा उनका संवर्धन सम्भव हो पा रहा है। गुजरात के इस शहर की समृद्ध परंपरा, शिक्षण, विनम्रता और प्रेमपूर्ण तथा उष्मापूर्ण सरल आतिथ्य आपके हृदय को अवश्य छू जाएगा।

अब मैं आपको इस शहर की एतिहासिकता से परिचित करवाता हूँ।

• भद्र का किला और तीन दरवाजा :

सन् 1411 में कर्णावती नगर पर आधिपत्य कर लेने के बाद साबरमती नदी के पूर्वी तट पर सुलतान अहमदशाह द्वारा भद्र के किले का निर्माण करवाया गया। अत्यन्त उलझनपूर्ण नक्काशी से कमान और झरोंखो का निर्माण किया गया है। यहाँ सैनिकों के बैठने के लिए भी विशेष स्थान बनाए गये हैं। यह अपने समय का दरबारी महल था। इसके सामने विशाल बाग बगीचे थे। पेश्वा और गायकवाड के संयुक्त शासन ने ई.स. 1583 में मुगल शासन का अंत किया। जब मराठों ने इस किले पर अपना आधिपत्य किया तब उन्होंने इसके एक हिस्से को भद्रकाली माता के मंदिर में परिवर्तित कर दिया।

तीन कमान का प्रवेशद्वार तीन दरवाजा कहलाता है। यह मूलतः शाह और राजदरबारियों के प्रवेशद्वार के रूप में निर्मित किया गया था। यह एक पूर्णतः सप्रमाण और उच्चकोटी का सुसज्जित आलिशान स्मारक है। तीन दरवाजा के ठीक सामने भद्र का किला है अर्थात् तीन दरवाजा विशाल और अद्‌भुत भद्र के किले के दरबार का प्रवेशद्वार था। यहाँ अत्यंत विशाल राजदरबार लगता था।

अहमदाबाद म्युनिसिपल कोर्पोरेशन और भारतीय पुरातत्वीय विभाग के द्वारा भद्र के किले को भद्र प्लाजा विकास प्रोजेक्ट के तहत नया स्वरूप देने की पहल की गई है।

- **सिदि सैयद की मस्जिद :**

सन् 1573 में निर्मित यह मस्जिद अहमदाबाद में मुगल साम्राज्य के दौरान बनाई गई सबसे अंतिम मस्जिद है। इसकी सबसे बडी विशिष्टता यह है कि इसकी पश्चिमी दिवालों की खिड़कियों में बारीक नक्काशी की गई जाली है, जो पूरी दुनिया में प्रसिद्ध है। विश्वभर में यह जाली अहमदाबाद की विशेष पहचान, विशेष प्रतीक बन गई है। इसे सिदि सैयद की जाली के नाम से विश्वभर में जाना जाता है। एक वृक्ष की शाखाएं दर्शाती हुई और सुन्दर केश-गुंफन जैसी लगनेवाली नक्काशी जो सामान्य रूप से एक सख्त, कठोर पत्थर में से बनाई गई है। इसका वर्णन शब्दातीत है इसे तो साक्षात देखकर ही इसकी कला का आनन्द उठाया जा सकता है। धार्मिक धर्मनिष्ठता के साथ बौद्धिक हस्तकला का यह अद्वितीय उदाहरण है।

- **जामा मस्जिद :**

सन् 1423 में शहर के स्थापक सुलतान अहमदशाह द्वारा इस मस्जिद का निर्माण किया गया था। कई स्थापत्यविदों और इतिहासकारों के द्वारा इस मस्जिद को पूर्व की सबसे सुंदर और अद्‌भूत मस्जिद के रूप में वर्णित किया गया है। इसे शुक्रवार अथवा आम जनता की मस्जिद के नाम से भी जाना जाता है। पीले रंग के खड़े पत्थरों से बनाया गया यह स्थापत्य मुगल शैली का हिन्दू और मुस्लिम परम्परा का एक श्रेष्ठ संयोजन है। यह अपने भव्य स्केल, सुन्दर प्रमाण और उत्कृष्ठ कारीगरी के लिए उल्लेखनीय है। इसके 15 गोलाकार गुंबद विविध एलिवेशन को आधार देते हुए 260 स्तम्भों पर निर्भर है। यह मस्जिद मूल अहमदाबाद शहर के केन्द्र में स्थित है।

• कांकरिया तालाब :

इस तालाब का निर्माण ई.स. 1451 में सुलतान कुतबुद्दीन ने करवाया था। इसे हौज-ए-कुतुब कहते थे, लेकिन आज यह कांकरिया तालाब के नाम से प्रसिद्ध है। मुगल शासन के दौरान यहाँ नूरजहाँ और जहाँगीर अक्सर घूमने आया करते थे। आज यह अहमदाबाद का सबसे लोकप्रिय स्थान है। 34 मोड़वाला बहुकोणीय यह कृत्रिम तालाब 1.7 किलोमीटर के विस्तृत विस्तार में फैला हुआ है, और अत्यन्त रमणीय दृश्य के समान है। तालाब के मध्य में नगीना वाडी नामक बाग रूपी टापू स्थित है। शाम को यहाँ पर लोगों की भीड़ एकत्रित होती है। जो खाने-पीने की चीजों की दूकाने और अनौपचारिक मनोरंजन के लिए आते हैं। यहाँ लाइट शो और वोटर शो भी है। तालाब में नौका विहार का यहाँ अपना अनूठा आनन्द है। तरह-तरह की रंगीन रोशनियों से जगमगाता यह तालाब यकीनन दर्शनीय है। इस कांकरिया तालाब के परिसर में ही प्राणी संग्रहालय, प्राकृतिक एतिहासिक म्युजियम, बालकों एवं सभी पर्यटकों के लिए खुली ट्रेन और विशेष बाग जिसे बालवाटिका के नाम से जाना जाता है। यह सब देखने लायक हैं, और अब तो नये-नये आकर्षण भी मौजूद हैं। जिनमें हिलियम बलून जो करीब सौ फिट से अधिक की ऊँचाई तक ले जाकर ऊपर से अहमदाबाद शहर का अद्‌भुत नजारा दिखाता है।

• दादा हरीर की वाव :

शिलालेखों और स्थापत्यों की शृंखलाओं में यह वाव मुहम्मद बेगड़ा के दरबारियों में से किसी दरबारी की एक स्त्रि बाई श्री हरीरा द्वारा सन् 1501 में निर्मित की गई है। इसका प्रवेशद्वार गुम्बद नुमा पेवेलियन जैसा है। इसमें से पत्थरों के स्तम्भों का प्लेटफोर्म और पायदानों की शृंखला मध्यस्थ जलाशय के नीचे तक जाती है। इसकी दिवालें और स्तम्भ भव्य नक्काशी द्वारा बेहद सुसज्जित हैं। प्राचीन काल से ही पर्यटकों और मुसाफिरों के आराम और उनकी सुविधा के लिए जलाशय और ठहरने के स्थानों की व्यवस्था की जाती रही है। उसी सिलसिले में इसका निर्माण किया गया लगता है। धर्मनिष्ठता के इस स्थापत्य से वाव का ठण्डा पानी और आरामगृह उपलब्ध कराए गए हैं।

• रानी सिप्रि की मस्जिद :

रानी सिप्रि की मस्जिद और कब्र उस समय की अहमदाबाद की भव्य इमारतें और स्थापत्य हैं। मुहम्मद बेगड़ा की मृत्यु के तीन वर्ष के बाद उसकी एक पत्नी रानी आसनी ने ई.स. 1514 में इस इमारत का निर्माणकार्य पूर्ण करवाया था। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता फर्ग्युसन द्वारा इस इमारत और स्थापत्य की बेहद प्रशंसा की गई है। इसके स्तम्भों और दीवालों की नक्काशी तो लाजवाब है ही इसकी कमानों और गुम्बदों का आकर्षण भी उतना ही बेहतरीन है। इसकी इसी कारीगरी और सुन्दर स्थापत्य कला के कारण ही इसे मस्जिद ए-नगिना के नाम से प्रसिद्धी प्राप्त हुई है।

• झूलते मिनारे :

सिदी बशीर की मस्जिद के झूलते मिनारे देखने और महसूस करने के लिए सभी को उत्साहित करते हैं। सारंगपुर दरवाजा के बाहर, अहमदाबाद रेलवे स्टेशन से लगे हुए स्थान पर ये स्थापत्य पूरी शान से सर उठाए खड़े हैं। मीनारों का झूलना अर्थात् उसमें कम्पन होना अपने आपमें आश्चर्यजनक है। दो मिनारे बिलुकल पास-पास में हैं। एक मिनार के अन्दर जाकर ऊपर गुम्बद तक जाने के लिए बनी हुई गोलाकार सीढ़ी से ऊपर पहुँचकर उसकी खिड़की में खड़े होकर उसकी दीवाल पकड़कर हिलाने पर वह मिनार और पास में खड़े मिनार दोनों हिलते हैं, दोनों में कम्पन होता है। यह यकीनन आश्चर्य जनक है। इसके कम्पन का रहस्य जानने के लिए अंग्रेजों ने काफी कोशिश की किन्तु उनके इस निरर्थक प्रयत्न में एक मिनारे का गुम्बद नष्ट हो गया। मेरे विचार से तो इस अद्वितीय और अद्‌भुत स्थापत्य को विश्व के अजूबों में स्थान प्राप्त होना चाहिए।

• हठीसिंह जैन मंदिर :

15 वे जैन तीर्थंकर श्री धर्मनाथ को समर्पित करते हुए यह मंदिर बनाया गया है। शेठ हठीसिंह के द्वारा सफेद संगमरमर में से इस मंदिर का निर्माण कार्य किया गया है। जैन परिवारों की पीढीयों के लिए इस पवित्र मंदिर का निर्माण किया गया है। इस भव्य और आलिशान जैन मंदिर का निर्माण कार्य सलत समुदाय के प्रसिद्ध स्थापत्यकार प्रेमचन्द सलत ने किया है। जैन तीर्थंकरों की मूर्तियों की शिल्पकारी इतनी अद्‌भुत है कि मूर्तियाँ जीवंत प्रतीत होती हैं। दरवाजों, दीवालों और कमानों की नक्काशी आकर्षक और मनमोहक है।

• **सरखेज का रोजा :**

सुलतान अहमद शाह द्वारा बसाए गए इस शहर में जितने भी स्थापत्य और इमारतें हैं, उनमें सबसे भव्य और जटिल कला कारीगरी के स्थापत्य में सरखेज के रोजा का समावेश होता है। यहाँ पर संत अहमद खादू गंज बक्ष की कब्र है। यहाँ मुहम्मद बेगड़ा और उनकी पत्नी राजाबाई के महल और विशेष आरामगाह भी है। इस विशाल इमारत की सबसे बड़ी विशेषता यह है की यहाँ गर्मी का एहसास नहीं होता है। दीवालों की मोटाई, कमरों की चौड़ाई और झरोखों को विशेष कोण में इस तरह रखा गया है कि हवा के आगमन और निगमन से गर्मी महसूस नहीं होती है। इस विशाल भव्य स्थापत्य की दीवालों, दरवाजों, कमानों और गुम्बदों की नक्काशी से प्रभावित होकर यहाँ पर्यटकों का तांता लगा रहता है। इस एतिहासिक इमारत में कई फिल्मों का फिल्मांकन भी हुआ है।

• **गांधी आश्रम :**

ई.स. 1915 में हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने इस आश्रम की स्थापना की थी। यह आश्रम, यह स्थान हमारे राष्ट्रीय स्मारकों में से महत्त्वपूर्ण स्मारक है। यह वो ऐतिहासिक स्मारक है कि जिसके दर्शन के बिना हमारा इस देश में रहना निरर्थक है। इसी स्थान से महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन चलाए, इसी स्थान से उन्होंने महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए और भारत को स्वतंत्रता दिलाने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यही वो स्थान है जहाँ से उन्होंने अंग्रेजों के द्वारा बनाए गए नमक कानून को तोड़ने के लिए दांड़ी कूच की थी। सन् 1930, 12 मार्च के दिन यहीं से अपने साथियों, अनुयायियों के साथ दांडी कूच का प्रारम्भ किया था। जिस सकरे और छोटे से पुल से वे गुजरे थे उसे राष्ट्रीय, सांस्कृतिक स्मारक घोषित करके उसकी सरंक्षा, सुरक्षा की जा रही है।

इसी आश्रम में वे जहाँ रहते थे उस सादे से कुटीर को हृदय कुंज नाम दिया गया है। उनका वही चरखा, उनके कपड़े, बर्तन, रोजमर्रा की चीजें बड़ी ही सुरक्षा, सरंक्षा से यहाँ सुसज्जित हैं। यहाँ विशाल और सुसज्जित भवन में गाँधीजी के सम्पूर्ण जीवन को अपनी भव्यता से उजागर

करती हुई प्रदर्शनी है, जिसमें उनके जीवन के लगभग तमाम चित्र और पुस्तकालय में सभी पुस्तकें उपलब्ध हैं। साबरमती नदी के किनारे बनाया गया यह आश्रम यहाँ आकर यकीनन मन को एक अलौकिक सुख और शांति का एहसास होता है।

- **केलिको म्युजियम :**

भारत के कोने-कोने में स्थित अलग-अलग क्षेत्रों में से कपड़ा और 500 वर्षों से अधिक समय के हस्त कला कारीगरी, हस्त बुनाई के टेक्सटाईल (कपड़ा) के चित्रों का एक विशेष उल्लेखनीय संग्रह स्थान है। सांस्कृतिक विरासत की सरंक्षा के लिए प्रवृत्तिशील साराभाई के एक अग्रगण्य व्यावसायिक परिवार के द्वारा स्थापित चेरिटेबल ट्रस्ट द्वारा यह संस्था कार्यरत है। विश्व की अधिकांश टेक्सटाईल म्युजियम में यह एक महत्त्वपूर्ण भारतीय संस्था है। इस संस्था की विशेषता तब और भी बढ़ जाती है, जब इसमें वर्तमान टेक्सटाईल के चित्रों और उनके प्रदर्शन के साथ-साथ हमें प्राचीन भारतीय कपड़ा बुनाई के प्रकार का भी पता चलता है। पिछले 500 वर्षों में कपड़ा उद्योग भारत में किस-किस दौर से गुजरा, कैसी-कैसी मशीने, कैसे-कैसे यंत्रों का उपयोग हुआ, किस तरह के कपड़ों का उत्पादन होता था, उनकी गुणवत्ता, रंग आदि की विविध, विस्तृत और पूर्ण विश्वसनीय जानकारी यहाँ से उपलब्ध होती है। यह संस्था हमारे समृद्ध, सम्पन्न और वैभवपूर्ण भव्य भारत का प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत करने में सम्पूर्ण सक्षम है।

- **संस्कार केन्द्र और सिटि म्युजियम :**

संस्कार केन्द्र के इमारत की रचना विश्व प्रसिद्धि प्राप्त फ्रेन्च आर्किटेक्चर ली कोर्बिसिअर द्वारा की गई है। इसमें सिटि म्युजियम का भी समावेश होता है। इस म्युजियम में अहमदाबाद को उसकी प्रत्येक विशेषताओं के साथ उजागर किया गया है। इतिहास, हस्तकला, स्थापत्य, शिल्पकला, नक्काशी कला, धर्म, सामाजिकता, रहन-सहन, भव्य इमारतें और विविध कला क्षेत्रों सहित विभिन्न केन्द्रों से अहमदाबाद को प्रकाशित किया गया है। इस स्थान से हम अहमदाबाद की संक्षिप्त जानकारी पूर्ण प्रभावीढंग से प्राप्त कर सकते हैं। यह एक पतंग म्युजियम भी है। पतंगों की आनन्दप्रद

महत्त्वपूर्ण जानकारी यहाँ उपलब्ध है । पतंगों के आश्चर्यजनक विविध आकार-प्रकार और उनके स्थान तथा इतिहास की आकर्षक और मनोरंजक जानकारी से आप सम्मोहित हुए बिना नहीं रह पाएंगे ।

- **साबरमती रीवरफ्रन्ट :**

साबरमती नदी के दोनों किनारों पर पर्यटकों और सभी के लिए मनोरंजन और आनन्द के लिए मनोरंजक और आकर्षक स्थानों का निर्माण किया गया है। नदी के दोनों किनारों पर लगभग दस किलोमिटर के लम्बे विस्तृत क्षेत्र में इनका निर्माण किया गया है। अगर यह कहा जाए कि एशिया में और विशेष रूप से भारत में ऐसा कोई स्थान नहीं है, तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी।

रीवरफ्रन्ट पर मनोरंजन के लगभग तमाम साधन उपलब्ध हैं। नदी के ऊपर से एक किनारे से दूसरे किनारे पर जाने के लिए मोटे तार से पट्टे के सहारे बंधकर अकेले गुजरना यकीनन रोमांचकारी है। इसे ज़ीप लाइन कहते हैं। नदी का विशाल पट और पानी के ऊपर से पुल के नजदीक से इस तरह गुजरना सचमुच रोंगटे खड़े कर देता है। इसमें तेज गति से बड़ी दूर तक नौका विहार का आनन्द उठाया जा सकता है। लगभग दो किलोमीटर में फैला एक विशेष बाग बनाया गया है। इसकी फुलवारी और विविध प्रकार के फूलों की रंगत मन को मोह लेती है। इस बाग को बड़े ही आकर्षक ढंग से डिजाइन किया गया है। दूसरी तरफ तमाम प्रकार के खाने-पीने के स्टोल हैं। एक तरफ बच्चों-बूढ़ों और तमाम लोगों के बैठने की बड़ी ही सुन्दर व्यवस्था है। रंग-बिरंगी रोशनी से जगमगाता यहाँ शाम का दृश्य अत्यंत आकर्षक और मनमोहक होता है। पानी से भरपूर नदी के किनारे इस तरह की शाम का आनन्द उठाना यकीनन बड़े सौभाग्य और गर्व की बात है।

रीवरफ्रन्ट पर वर्ष भर तरह-तरह के कार्यक्रमों का आयोजन होता रहता है । पतंगोत्सव का कार्यक्रम तो यहाँ की विशेष वैश्विक पहचान हो गई है । विश्व के कोने-कोने से पतंग रसिया यहाँ आते हैं। इस कार्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए तब यहाँ की रौनक और भी देखने लायक होती है। पुस्तक मेला, योग दिवस, विविध प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रम, गरबा महोत्सव ऐसे अनेकों कार्यक्रम से रीवरफ्रन्ट साल भर जगमगाता और आकर्षित बना रहता है । दस किलोमीटर के विस्तृत लम्बे क्षेत्र में फैले रीवरफ्रन्ट का आनन्द लेना यकीनन रोमांचकारी है ।

• **सरदार पटेल म्युजियम :**

स्वतंत्र और लोकतांत्रित भारत के प्रथम गृह मंत्रि और भारत भर में सबसे अधिक लोकप्रिय सर्वमान्य राजनेता आदरणीय श्री वल्लभभाई पटेल के सम्पूर्ण जीवनकाल को प्रकाशित करनेवाला यह प्रदर्शन यकीनन दर्शनीय है। जिस विशाल और आलिशान इमारत में यह प्रदर्शनी लगाई गई है वह इमारत अर्थात् मोती शाही महल सन् 1618 से सन् 1622 के मध्य शाहजहाँ द्वारा निर्मित किया गया है। इसे नेशनल म्युजियम की श्रेणी में रखा गया है। जीवन भर राष्ट्र को समर्पित रहनेवाले पूर्णत: राष्ट्रप्रेमी-राष्ट्र भक्त सरदार पटेल के जीवन से जुड़ी छोटी-छोटी चीज और घटना का यहाँ पर अद्‌भुत संग्रह किया गया है। तमाम देशी रजवाडों और छोटे-छोटे टुकड़ों में बटे-बिखरे राज्य-क्षेत्रों को एकत्रित कर उन्हें समूह में लाना, उन्हें एक राष्ट्र बनाना, भारत के आकार को साकार कर सार्थक करनेवाले सरदार पटेल के म्युजियम को बनाने के लिए इस मेमोरियल की स्थापना 7 मार्च सन् 1980 में की गई।

• **स्वामिनारायण मंदिर :**

स्वामी सहजानन्द के सम्मान में कालुपुर स्वामिनारायण मंदिर का निर्माण 19 वीं सदी में किया गया। 19 वीं सदी में निर्मित इस मंदिर के निर्माण में अधिकांशत: बर्मा साग की लकड़ी का उपयोग किया गया है। लकड़ी के स्तम्भ, और छत बनाने की कला यकीनन अद्‌भुत है। साथ ही इनके स्तम्भों और कमानों में की गई नक्काशी आश्चर्यचकित कर देनेवाली है। महान संत स्वामी सहजानंद के जीवनकाल और स्वामीनारायण सम्प्रदाय की स्थापना के दौरान सबसे पहले निर्मित किया गया यह मंदिर स्वामिनारायण के तमाम मंदिरों में से एक विशेष और महत्त्वपूर्ण मंदिर माना जाता है। स्वामिनारायण सम्प्रदाय के मंदिर तो विश्व के कोने-कोने में फैले हुए हैं। विस्तार और आधुनिकता से सुसज्जित इन मंदिरों का निर्माण यकीनन अद्‌भुत, अद्वितीय और अनुपम है। किन्तु एतिहासिकता की दृष्टि से इस कालुपुर स्वामिनारायण मंदिर का महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है।

• **वेछार उतेन्सिल म्युजियम :**

इस म्युजियम की स्थापना सन् 1981 में हुई है। विशाला विलेज रेस्टोरेन्ट के पास स्थित यह म्युजियम अपने आपमें अनुठा और अलग तरह

का म्युजियम है। कला, संशोधन और स्थापत्य की विरासत के लिए इस विशेष म्युजियम की स्थापना की गई है। हजारों वर्ष पहले का मानव किस तरह के बर्तनों का उपयोग करता था और तब से लेकर आज तक के आधुनिक बर्तनों के उपयोग का सिलसिलेवार वर्णनात्मक विवरण उदाहरणों के साथ यहाँ प्रस्तुत किया गया है। पत्तों का बर्तन के रूप में उपयोग फिर पाषाण और होते-होते आज आधुनिक बर्तनों में धातुओं का उपयोग होने लगा है। पितल, तांबा, जसत, झींक, चांदी, जर्मन सिल्वर जैसी विशाल श्रृंखला उपलब्ध है। हजारों वर्षों से इतिहास में समयकाल के अनुरूप मानव ने अपनी आवश्यकता और पर्यावरणीय परिवर्तन के अनुकूल अपने बर्तनों को भी बदला है। इन्ही संदर्भो पर आधारित यह एक विशेष और महत्त्वपूर्ण संग्रहालय और शोध केन्द्र है।

वैसे तो अहमदाबाद पर कई शोध निबन्ध तैयार हो सकते हैं। इस आलेख के प्रारम्भ में ही बताया है कि अहमदाबाद में 600 पोल, 2600 हेरिटेज साइट्स और पुरातत्विय दृष्टि से 24 महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। इन सभी को यहाँ स्थान दे पाना संभव नहीं है। स्थानाभाव के कारण इस आलेख को यहीं पर विराम देते हुए अन्त में यही कहना है कि अहमदाबाद को विश्व विरासत शहर का दर्जा मिलना सिर्फ अहमदाबाद और गुजरात के लिए ही सम्मान पूर्ण बात नहीं है, बल्कि पूरे भारत वर्ष के लिए बड़े गौरव और सौभाग्य की बात है। वैश्विक फलक पर अहमदाबाद भारत की, इस देश की पहचान बनकर उभरा है। अब इसकी रक्षा, सरंक्षा करना देखभाल करने का दायित्व सरकार का तो है ही लेकिन उससे भी कहीं अधिक हम सब का है। हम सभी भारतीयों का है। हमें अपनी पहचान नहीं खोनी है। हमें अपनी सुन्दरता में और चार चाँद लगाने हैं।

ऐ हालो अमदाबाद जोवा
जय हिन्द, जय भारत
जय जय गरवी गुजरात.

● ● ●